सरस्वती-वरदपुत्र

पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य

अभिनन्दन ग्रन्थ

सरस्वती-वरदपुत्र
पण्डित बंशीधर व्याकरणाचार्य
अभिनन्दन-ग्रन्थ

• • • •

शोध-कण

गोलापूर्व जातिके परिप्रेक्ष्यमें

प्रो० यशवन्त कुमार मलैया
प्राध्यापक—कम्प्यूटर साइंस विभाग, कोलो रैडो स्टेट यूनिवर्सिटी,
फोर्ट कॉलिंस, सी ओ 80523 (303) 491-7031

[विद्वान् लेखकने अपने इस शोध-लेखमें कई महत्त्वपूर्ण तथ्योंको प्रस्तुत किया है, जो न केवल अनुसन्धित्सुओंके लिए दिशा-बोधक हैं, अपितु इतिहासके मनीषियोंके लिए भी विमर्श-योग्य हैं। उनसे लेखककी व्यापक मनीषा और गहरा चिन्तन प्रकट होता है।

आशा है इस शोध-निबन्धसे आदरणीय पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीके शब्दोंमें **'ऐतिहासिक दृष्टिसे अति उपयोगी एक कमीकी पूर्ति'** हो सकेगी।—**प्र०सं०**]

भूमिका

सामाजिक विभाजन केवल भारतमें ही सीमित नहीं है। हर समुदायमें समाज किसी न किसी कारणसे बँटा हुआ है। भारतमें यह जाति-व्यवस्थाके रूपमें काफी विकसित व प्रभावशाली स्थितिमें स्थित है। मानव जातिके विकासके अध्ययनमें जाति-व्यवस्थाका विशेष महत्त्व है। अन्य समुदायोंके विभाजनमें जो गुण पाये जाते हैं, उन पर जाति-व्यवस्थाके अध्ययनसे काफी प्रकाश पड़ता है। भारतमें व भारतके बाहर, अनेक विद्वानोंने जाति-व्यवस्थाके कई पक्षोंका अध्ययन किया है। संबंधित साहित्यको देखते हुए, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस व्यवस्थाके कई पक्ष अभी ठीकसे नहीं समझे जा सके है। विशेषतौर पर जाति व्यवस्थाके ऐतिहासिक उद्भव व विकासका वैज्ञानिक अध्ययन काफी कम हुआ।

इतिहासका वैज्ञानिक अध्ययन अक्सर राजवंशोंके आधार पर हुआ है। राजवंशों व राज्योंके इतिहासका महत्त्व स्वाभाविक है। परन्तु अक्सर सामान्य जनतासे संबंधित इतिहास पर ध्यान कम दिया जाता है। बहुतसी सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक शक्तियोंका जो अलग-अलग कालमें प्रभाव पड़ा है, वह राजवंशके इतिहासमें दृष्टव्य नहीं है। भारतके सामाजिक इतिहासमें जाति-व्यवस्थाका उचित अध्ययन न होनेसे बहुतसे अनुत्तरित प्रश्न मौजूद हैं।

जातियोंकी उत्पत्ति व विकास संबंधित जो साहित्य उपलब्ध है, उसमेंसे बहुतसा किसी विशेष उद्देश्यको लेकर लिखा गया है। इस कारणसे किसी भी वैज्ञानिक अध्ययनमें इस सामग्रीका उपयोग काफी सावधानीसे किया जाना चाहिये। अक्सर किसी एक जातिको ऊँचा दिखानेका प्रयास किया गया है। यह प्रवृत्ति सामान्य लेखकोंमें ही नहीं, विद्वानोंमें भी देखी जा सकती है। चारणों व भाटोंने हरएक राजपूतवंशकी उत्पत्ति या तो रघुवंशी रामचन्द्रसे या यदुवंशी श्रीकृष्णसे बताई है। चारणों आदि को ऐतिहासिक तथ्योंमें कुछ फेर-बदल करनेमें संकोच नहीं था। लेकिन यह देखकर आश्चर्य होता है कि अंबेडकर जैसे लेखकने शूद्रोंकी उत्पत्ति क्षत्रियोंसे सिद्ध करनेका प्रयास किया था[1]।

प्रस्तुत लेखका उद्देश्य एक विशेष जातिको उदाहरणके रूपमें लेकर उसका अध्ययन करना है। गोलापूर्व जैन जातिकी उत्पत्ति व विकासके संबंधमें जो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रश्न हैं, उनपर विचार किया गया है। जैसा कि आगे प्रस्तुत है, यह अध्ययन तुलनात्मक है। अन्य जैन व हिन्दू जातियोंके अध्ययनके बिना अनेक प्रश्नोंका समाधान असंभव था। किसी भी ऐतिहासिक अध्ययनमें किसी भी धारणाको निस्संदेह प्रमाणित कर सकना असम्भव है। फिर भी लेखकका विश्वास है कि इस अध्ययनसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

जाति सम्बन्धी जानकारीके सात प्रमुख स्रोतोंका यहाँ प्रयोग किया गया है। जाति-सम्बन्धी कुछ जानकारी प्राचीन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थोंसे मिलती है। इनका विशेष उपयोग आठवीं-दसवीं शताब्दीतक की स्थितिके निर्धारण हैं। देशी भाषाओंमें लिखे कई ग्रन्थ या छोटी-छोटी रचनायें मिलती हैं जो किसी एक जातिको लेकर लिखी गई हैं। ये अठारहवीं शताब्दी तकके आसपासके दृष्टिकोणोंसे लिखी गई हैं। अंग्रेजोंका राज्य होनेके बाद भारतीय इतिहासका आधुनिक तरीकोंसे अध्ययन हुआ। अंग्रेज व अन्य यूरोपियन विद्वानोंने बड़े परिश्रमसे शिलालेखों, संस्कृतके ग्रन्थों आदिका अध्ययन किया। जातियोंके रीति-रिवाज, परम्परागत धारणाएँ आदिके बारेमें पुस्तकें लिखी गईं। इस अध्ययनके नेतृत्वका श्रेय यूरोपियन विद्वानोंका है, पर इसमें तत्कालीन भारतीय पंडितोंका योगदान कम नहीं था। भारतमें चेतना व आत्मविश्वास आनेके कारण बहुतसी जातियोंके विद्वानोंने अपनी-अपनी जातिके इतिहास व वर्तमान स्थितिपर पुस्तकें लिखीं। बीसवीं शताब्दीमें बहुतसे शिलालेख प्रकाशमें आये हैं, और आते जा रहे हैं, जिससे जातियोंके अध्ययनमें काफी मदद मिली है। स्वतन्त्रताके बाद कई भारतीय व विदेशी लेखकोंने जाति-व्यवस्थापर पुस्तकें व लेख लिखे हैं। पर इनमेंसे अधिकतरका उद्देश्य वर्तमान स्थिति व परिवर्तन रहा है, जातियोंके इतिहासपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

जाति सम्बन्धी अनेक शब्दोंमें काफी भ्रांति पाई जाती है। महत्त्वपूर्ण शब्दोंकी यहाँ परिभाषा देना आवश्यक है। जाति शब्द अंग्रेजीके Caste का पर्यायवाची है जो पोर्चुगीज भाषासे निकला है। बोलचालमें जात, उर्दूमें ज़ात व संस्कृतमें ज्ञाति इसीके पर्यायवाची हैं। शिलालेखों व प्राचीन ग्रन्थोंमें अन्वय शब्दका प्रयोग जातिके अर्थमें भी किया गया है और सम्प्रदायके अर्थमें भी। परम्परागत तौरपर जातिके दो प्रमुख लक्षण हैं।

(१) एक जातिके सदस्योंका विवाह उसीके अन्तर्गत होता है। इस नियमके अपवाद हमेशा रहे हैं। किसी जातिका स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहनेके लिये दो बातें आवश्यक हैं। पहली—जातिके अधिकतर सदस्योंका सम्बन्ध जातिके अन्तर्गत होना चाहिये। दूसरी—जो सम्बन्ध अन्य जातियोंमें हों, उसकी संततिका करीब आधा भाग, जातिका सदस्य बना रहे।

(२) हर जाति कुछ गोत्रोंमें विभक्त रहती है। एक ही गोत्रमें विवाह सम्बन्ध नहीं होता। इस नियमका अपवाद बहुत बिरली स्थितियोंमें ही होता है। कई बार एक जाति किसी कारणसे कई उपजातियोंमें बँट जाती है। अगर कोई उपजाति स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखनेमें सक्षम है, तो उसे भी एक स्वतन्त्र जाति माना जा सकता है। एक जैसे रीति-रिवाज व सामाजिक स्थितिवाली अनेक जातियोंके समूहको कभी-कभी एक ही संज्ञा दी जाती है। जिस समूहमें उपरोक्त दो लक्षण हों, उसे एक जाति कहा जा सकता है। जातियाँ स्थाई इकाइयाँ नहीं हैं, इनमें संघटन, विघटन व परिवर्तनकी शक्तियाँ काम करती रहती हैं।

कई बार वर्ण-व्यवस्थाको ही भ्रमसे जाति-व्यवस्था मान लिया जाता है। दोनों व्यवस्थाओंमें कुछ सम्बन्ध तो है, पर वे अलग-अलग हैं। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें आर्योंको चार वर्णोंमें बाँटा गया है; परन्तु उस समय भी बहुतसी जातियाँ ऐसी थीं, जो किसी एक वर्णमें नहीं रखी जा सकती थी। इन्हें वर्णसंकर माना गया। इनमेंसे कायस्थ जाति प्रसिद्ध है, इन्हें क्षत्रिय माना जाय या शूद्र, यह विवाद अभीतक चला आया है। कई बार यह प्रश्न ब्रिटिश अदालतोंमें भी उठाया गया था[१,२]।

कौनसी जाति किस वर्णमें है, इसका निर्णय कैसे किया जाये? इसके बारेमें तीन प्रमुख मत हैं। आजकल सामान्य लोग जो प्रयोग करते हैं, उसे उदार मत कहा जा सकता है। इस मतसे विभाजन वर्तमान सामाजिक व आर्थिक स्थिति देखकर निर्णय किया जाता है। पिछली दो-तीन पीढ़ियोंके पहलेके इतिहासपर विचार नहीं किया जाता है। उदार मतसे भूस्वामी जातियाँ जैसे मराठे, कुर्मी, जाट आदि क्षत्रिय मानी जाती

हैं, और जो भी जातियाँ वाणिज्यमें लगी हैं, उन्हें वैश्य माना जाता है। दूसरा परम्परागत मत है। यह मत संस्कृत व शास्त्र आदिमें परिचित ब्राह्मणोंका मत है। इसके अनुसार वही जातियाँ द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हैं जिन्हें परम्परागतरूपसे ब्राह्मण उपवीत देते आ रहे हैं। मनु आदि लेखकोंके समयमें द्विज दक्षिणापथमें नहीं बसते थे, इस कारणसे दक्षिणापथमें द्विज वही हो सकते हैं जो उत्तरसे जाकर बसे हों। गुजरात व महाराष्ट्र दक्षिणापथमें माने जाते हैं (इसीलिये गुजराती व महाराष्ट्री ब्राह्मण पंचद्रविड़में आते हैं)। परम्परागत मतसे राजपूत, खत्री आदि क्षत्रिय माने जाते हैं, पर कुर्मी जाट आदि नहीं।[३] कई बनिया जातियाँ इस मतसे सच्छूद्र मानी जाती हैं। अधिकतर बनिया जातियाँ जिनमें जैन व हिन्दू दोनों ही हैं, उनके हिन्दू विभागको वैश्य माना गया है ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड[४] इसी मतको लेकर लिखी गई है।

तीसरा मत कठोर-मत है जिसके अनुसार द्विजोंमें वर्तमानकालमें सिर्फ ब्राह्मण ही हैं, क्षत्रिय व वैश्य वर्णोंका नाश हो चुका है। यह नाश कैसे हुआ व कब हुआ, इसके बारेमें संतोषजनक उत्तर नहीं मिलते। फिर भी यह मत ऐतिहासिक दृष्टिसे काफ़ी महत्त्वपूर्ण है।

यह मत समय-समयपर कुछ ब्राह्मण पंडितों द्वारा व्यक्त किया गया था। एक बार यह ब्रिटिश अदालतमें भी उठाया जा चुका है[५]। ऐसा कहा जाता है कि क्षत्रियोंका नाश परशुराम द्वारा संहार किये जानेपर हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य व उसके उपरांतके राजवंशोंको शूद्र माना गया है[४]। वर्तमानमें जितने भी राजपूत घराने हैं, किसीके बारेमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे उनका रामायण-महाभारतकालीन क्षत्रियोंसे संबंध माना जा सके[५]। अगर पं० ओझा[६] की गणना मानी जाय तो महाभारतका युद्ध ईस्वीपूर्व १४७१ के आसपास हुआ था। वर्तमान राजपूत वंशोंमें सबसे पुराने उल्लेख चाहमानों (चौहानों) का ५५१ ई० का माना जा सकता है[७/८/९]। राष्ट्रकूट (राठौर) वंशका प्रथम उल्लेख ६३० ई०, गुर्जर-प्रतिहारों (पडिहार) का ७३० ई०, मेवाड़के गुहिल (गुहिलौत) वंशका ७३५ ई०, कच्छपघट (कछवाहे) वंशका करीब १००० ई० के आसपास का माना गया है। ये राज्यकी स्थापनाके बाद ही प्रसिद्ध हुए हैं। राजपूतोंके पहले उत्तर-पश्चिमी भारतमें शक, हूण, गुर्जर, अभीर आदि जातियोंका व्यापक प्रभाव था। बहुतसे लेखकोंका[१/७] मत है कि राजपूतोंकी उत्पत्ति इन्हीं कबीलोंसे हुई है। इन जातियोंमेंसे जो परिवार प्रभावशाली हो गये, ब्राह्मणोंने उन्हें राजपूत संज्ञा देकर क्षत्रिय मान लिया। गूजर जातिको राजपूत नहीं माना जाता, पर बड़गूजर जो गूजर जातिसे निकले समझे जाते हैं, राजपूत माने जाते हैं। कछवाहा व काछी (जो आज भी कच्छपघटोंके मूलस्थानमें काफ़ी संख्यामें हैं) जातिका भी कभी-कभी ऐसा ही संबंध माना जाता है। इसी प्रकारसे गोंडोंमेंसे राजगोंड, भारोंसे राजभार, भीलोंसे भिलाल आदिकी उत्पत्ति मानी जाती है। उदयपुरके गुहिलौत (सिसोदिया)[७] व कोचीनके राजपरिवार[११] की उत्पत्ति अंशतः ब्राह्मणोंसे ही मानी जाती है। पंजाबकी खत्री जातिमें यज्ञोपवीत व वेदाध्ययनकी परम्पराको देखकर कभी-कभी उन्हें ही क्षत्रियोंका वंशज माना जाता है। इस परम्पराका उल्लेख आर्यसमाजकी स्थापना (ई० १८७७) से भी पहलेका मिलता है[१०]। कोई-कोई इन्हें वर्णसंकरोंमेंसे मानते हैं।

इसी तरहसे बनिया जातियोंमेंसे किसीके भी आठवीं शताब्दीके पहलेके उल्लेख नहीं मिलते। इनकी उत्पत्ति या तो राजपूतोंसे (ओसवाल, खण्डेलवाल, बघेरवाल आदि) या क्षत्रियोंसे (अग्रवाल, गोलाराडे आदि) या ब्राह्मणोंसे (पद्मावतीपुरवार[१२], अग्रहारी[१०]) से बताई जाती है। यदि सभी बनिया जाति अन्य वर्णोंसे उत्पन्न हैं, तो कठोर मतके दृष्टिकोणसे प्राचीन वैश्य जातिका अस्तित्व नहीं रह गया है।

उपरोक्त तीनों मतोंमेंसे कौनसा मत सही है, यह जानना मुश्किल है। लेखकका व्यक्तिगत मत यह है कि वर्तमान जातियोंको चार वर्णोंमें बाँटनेका कोई भी प्रयास उपयोगी नहीं है।

यहाँ पर ब्राह्मण जातियोंके बारेमें कुछ जानकारी उपयोगी है। ब्राह्मणोंमें सबसे पुरानी जाति कान्यकुब्ज (कनौजिया) है। सरयूपारी (सरवरिया), बंगालके राढ़ी व वैदिक, सनाढ्य, जिझौतिया व छत्तीसगढ़ी कान्यकुब्जोंसे ही निकले हैं। इनके अलावा महाराष्ट्री देशस्थ, कश्मीरी आदिकी उत्पत्ति भी कान्यकुब्जोंसे बताई जाती है। केरलके नंबूद्री अहिच्छत्रसे निकले माने जाते हैं, जो कन्नौजके ही पास है।'' पंचद्रविड व पंचगौड़में से लगभग सभीकी उत्पत्ति ब्रह्मर्षिदेश अर्थात् कन्नौजसे मानी जाना चाहिये। कुछ ब्राह्मण जातियाँ देवताओं, ऋषियों या राजाओंकी बनायी कही जाती हैं, उन्हें अन्य ब्राह्मणोंसे नीचा माना जाता है। कुछ ब्राह्मण जातियाँ यवन या फ़ारससे अद्भूत मानी जाती हैं—संस्कृतसे मिलती-जुलती भाषा बोलनेके कारण उन्हें ब्राह्मणोंमें मान लिया गया। भारतके बाहर थाईलैंड व बाली (इण्डोनेशिया) के ब्राह्मण कंबुज (कंबोडियाके) ब्राह्मणोंके अंतर्गत हैं। इनके पूर्वज दक्षिण भारतके थे। बहुत सी ब्राह्मण जातियोंको अन्य ब्राह्मण मान्यता नहीं देते, उन्हें शूद्रोंके समकक्ष मानते हैं।

इस लेखका प्रमुख उद्देश्य गोलापूर्व (गोलापूरब) जैन जातिका तुलनात्मक अध्ययन है। यह जाति अधिकतर बुन्देलखण्डमें बसती है। शिलालेखोंमें इसे गोल्लपूर्व्व भी लिखा गया है। सन् १९१४ ई० में प्रकाशित अखिल भारतीय दिगम्बर जैन डायरेक्टरीके अनुसार इसकी जनसंख्या १०,८३४ थी। इस डायरेक्टरीकी जनगणना एकदम सही नहीं थी, फिर भी इसके आधारपर गोलापूर्वोंकी वर्तमान जनसंख्याका अनुमान लगाया जा सकता है। इस गणनाके आधार ये हैं—

१. सन् १९११ व १९२१ के बीच जैनोंकी जनसंख्या करीब-करीब स्थाई थी।[१३] अतः जैनोंकी जनसंख्या सन् १९११ व सन् १९१४ में करीब-करीब बराबर रही होगी।

२. जैनोंकी जनसंख्या वृद्धिकी दर, भारतमें जनसंख्याकी वृद्धिके दरके लगभग बराबर रही है। सन् १९५१ में जैन भारतकी आबादीके ०.४५% थे, सन् १९७१ में ०.४७% थे। स्वतंत्रतासे पूर्व जैनोंकी प्रतिशत आबादी घटती रही थी। (सन् १८८१ में ४८% से सन् १९४१ में ३७%) पर इसका प्रमुख कारण मुसलमानोंकी काफ़ी अधिक वृद्धिकी दर था।

३. जैनोंकी संख्या मध्यप्रदेश व महाराष्ट्रमें अधिक बढ़ी है, व गुजराज, राजस्थान व उत्तर प्रदेशमें कम। इसका कारण संभवतः जैनोंमें अन्यत्रसे मध्यप्रदेश व महाराष्ट्रमें आकर बसते रहना प्रतीत होता है। जो भी हो, गोलापूर्वोंमें जनसंख्या वृद्धिकी दर समस्त जैन समाजकी दरके लगभग बराबर ही रही होगी। सन् १९११ के आसपास जैनोंकी संख्या १२,४८,१८२[१३] व गोलापूर्वोंकी १०,८३४ थी[१४] सन् १९४१ में जैनोंकी संख्या १४,४९,२३६ व गोलापूर्वोंकी १२,५६९ हो गई[१५] 'इससे इस ३० वर्षोंमें समस्त जैन समाजमें १६.१०% व गोलापूर्वोंमें १६.०१% वृद्धि निकलती है।

४. भारतकी जनसंख्या सन् १९११ से सन् १९८१ तक ९७% बढ़ी। अगर वर्तमान दशाब्दीमें वृद्धिकी दर १९७१-१९८१ की दरके बराबर मानी जाये (अर्थात् २४.८%), तो सन् १९८१ व १९८६ के बीच ११.७% वृद्धि हुई होगी।

विभिन्न धर्मावलंबियोंकी जनसंख्या, १९८१ की जनगणनासे उपलब्ध नहीं है। फिर भी उपरोक्त अनुमानोंसे गणना की जाय, तो गोलापूर्व जैनोंकी १९८६ में जनसंख्या २३,८४० के आसपास होना चाहिये। इस गणनामें संभवतः ५% से अधिकका दोष नहीं होना चाहिये, इससे जनसंख्याका अनुमान २२,६०० से २५,००० के बीच किया जाना चाहिये। इसी प्रकारसे अन्य दिगम्बर जैन जातियोंकी जनसंख्याका अनुमान दिगम्बर जैन डायरेक्टरीकी संख्यामें २०-२० का गुणा करके किया जा सकता है। इस गणनासे गोलालारे लगभग १२,०००, गोलसिंघारे १,४०० व परवार ९५,२०० होना चाहिये।

ये सभी दिगम्बर जैन हैं। इनमेंसे कुछ हिन्दू भी कहे जाते हैं पर उनके बारेमें कोई जानकारी नहीं मिल सकी।[१६] संभवतः इसी नामकी अन्य हिन्दू जातियाँ होनेके कारण यह भ्रम हुआ होगा। गोलापूर्वोंका एक भाग पचविसे कहलाता है। बुन्देलखंडकी सभी जैन जातियोंमें परस्पर भोजन व्यवहार रहा है, अर्थात् सभी जातियोंमें एक पंक्तिमें बैठनेका अधिकार रहा है।[१६,१७] रसैल व हीरालालके अनुसार गोलापूर्व जैन व नेमा जातियोंमें पक्के भोजनका व्यवहार था।[१६] इनमें गोलापूर्वों व परवारोंमें कहीं-कहीं विवाह सम्बन्ध होनेका भी लिखा है। हिन्दी विश्वकोषमें इनके कपड़ा, घी आदिके व्यापारका उल्लेख किया है।[२] जैनोंमें ८४ जातियाँ कही गई हैं, ८४ जातियोंके नामोंकी अनेक सूचियाँ उपलब्ध हैं।[१३,१७] इनमेंसे अनेकमें गोलापूर्व जातिका नाम है।

गोलापूर्व जातिके प्राचीन शिलालेख अनेक स्थानोंमें मिलते हैं। बीसवीं शताब्दीके पूर्व गोलापूर्व जातिके बारेमें जानकारी केवल एक ही प्रमुख स्रोतसे उपलब्ध थी। बुन्देलखण्डमें मलहराके पास खटौरा ग्रामके निवासी नवलसाह चंदेरियाने ई० १७६९ में वर्धमान पुराणकी रचना की थी। इसमें ८४ जातिके वैश्योंकी एक सूचीके बाद गोलापूर्व जातिकी उत्पत्तिका वर्णन किया है। गोलापूर्वोंके ५८ गोत्रोंकी एक सूची दी है। नवलसाहने अपने परिवारके इतिहासका भी काफ़ी पुराने अर्सेसे वर्णन किया है।[१७]

वर्तमान शताब्दीमें सन् १९११ में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन डायरेक्टरीका प्रकाशन हुआ।[१४] इसमें सभी दिगम्बर जातियोंके बारेमें अत्यन्त परिश्रमसे एकत्र जानकारी मौजूद है। सन् १९४० में अखिल भारतीय गोलापूर्व डायरेक्टरीका प्रकाशन हुआ,[१५] जो गोलापूर्व जातिके बारेमें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। अभी कुछ वर्ष पहले एक अन्य गोलापूर्व जातिकी डायरेक्टरीका प्रकाशन हुआ था, पर उसमें जानकारी अधूरी होनेके कारण उसकी उपयोगिता सीमित है। गोलापूर्व जातिके सम्बन्धमें अनेक प्राचीन शिलालेख प्रकाशमें आये हैं। शोध पत्रिकाओंमें गोलापूर्व जाति पर कुछ लेख उपलब्ध हैं। अभी हालमें दमोह नगर व छिंदवाड़ा जिलेके गोलापूर्व जैन समाज द्वारा स्थानीय जनगणना भी प्रकाशित हुई है।[१८,१९]

जातियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसके बारेमें अभी तक स्पष्ट नहीं जाना जा सका है। इसका वैज्ञानिक अध्ययन करनेकी आवश्यकता है। हर जैन जाति कि उत्पत्तिके बारेमें तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे जा सकते हैं—

१. जातिकी उत्पत्ति कहाँसे हुई ?

२. जातिकी उत्पत्ति कब हुई ?

३. उत्पत्तिका कारण क्या था ?

अनेक जातियोंकी उत्पत्तिके बारेमें कई किंवदंतियाँ पाई जाती हैं। परम्परागत धारणाओंकी पुष्टि करनेके प्रयासकी अपेक्षा उचित नियमोंका प्रयोग करके निष्कर्ष निकालना अधिक महत्वपूर्ण रहेगा। अनेक जातियोंकी उत्पत्तिके बारेमें जो धारणायें पाई जाती हैं, वे अक्सर कल्पित हैं। अक्सर जातिके नामको लेकर जातिकी उत्पत्तिका अनुमान लगानेकी कोशिश की गई है। इस कारणसे कई भ्रमजनित कल्पनायें मौजूद हैं, जिनमेंसे कुछके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

१. बनारसीदासने अपने अर्धकथानकमें लिखा है कि विहोली ग्रामके राजपूतोंने णमोकार मंत्रकी माला पहनी, इस कारणसे वे श्रीमाल कहलाये। वास्तवमें श्रीमाल जातिका नाम श्रीमाल (भीनमाल) स्थानसे हुआ है।

२. ओसवाल शब्दकी उत्पत्ति अश्ववाल (अर्थात् राजपूत) से कभी-कभी बताई जाती है।[२] पर— यह शब्द निश्चित ही ओसिया (उपकेश) मूलस्थानके कारण है।

३. जिझौतिया ब्राह्मणोंके बारेमें कहा जाता है कि वे बुन्देलखण्डमें बुन्देले महाराजा जुझार सिंहके कालमें आये, इसलिये वे जुझौतिया कहलाये। जुझौतिया नाम वास्तव में जुझौति (जैजाकभुक्ति) से पड़ा, जो बुन्देलखण्ड क्षेत्रका पुराना नाम है।

४. कछवाहा राजपूत वर्तमानमें अपने को कुशवाहा लिखते हैं और रामके पुत्र कुशसे उत्पत्ति बताते हैं। पर सबसे पुराने शिलालेखोंमें इन्हें कच्छपघट या कच्छपघात कहा गया है।

५. कान्यकुब्ज (कनौजिया) व सरयूपारी ब्राह्मण अपनेको किसी कान्यजी व कुब्जजीका वंशज कहते हैं।[२०] वास्तवमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका नाम कन्नौजके पास वास करनेसे हुआ है।

६. खण्डेलवाल शब्दकी उत्पत्ति खण्डु ऋषिसे या राजा गिरखण्डेलसे बताई जाती है[२१,२२,२३]। पर यह वास्तवमें खण्डेला स्थानके कारण है।

७. महेसरी (माहेश्वरी) शब्दकी उत्पत्ति महेश्वर अर्थात् शिवजीसे कही जाती है। पर संभवतः यह नाम भरतपुरके पार महेशन स्थानके कारण है।[२]

अग्रवाल जातिकी उत्पत्तिके बारेमें अनेक पुस्तकोंमें ऊहापोह मिलता है। इनके अग्रवाल कहलानेका कारण समाजमें अग्रणी होना, अगरुकी लकड़ीका व्यापार करना, आगरा शहर आदि कहे जाते हैं। पर इन्हें शिलालेखोंमें अग्रोतकान्वयका कहे जाने आदिके कारण यह निश्चित है कि ये वर्तमान अग्रोहा (प्राचीन अगोदक) स्थानसे निकले हैं।

कई बार भ्रमका कारण मूलपुरुषकी कल्पना है। यह इतनी व्यापक है कि कुछ लेखकोंने इसे जाति शब्दकी परिभाषामें स्थान दिया है। पर किसी भी जातिमें मूलपुरुष होना संभव प्रतीत नहीं होता।

१. एक ही व्यक्तिके पुत्रोंसे एक स्वतंत्र जाति कभी नहीं बन सकती क्योंकि एक ही व्यक्तिके वंशजों-में विवाह सम्बन्ध निषिद्ध हैं।[२२]

२. किसी दस-बीस परिवारोंसे भी कोई स्वतन्त्र जाति नहीं बन सकती। क्योंकि जिस समाजमें इन परिवारोंका विवाह सम्बन्ध पूर्वकालमें होता होगा उनसे अचानक सम्बन्ध तोड़ना मुश्किल है। किसी समाजसे दस-बीस परिवार तभी अलग हो सकते हैं जब किसी कारणसे इन परिवारोंकी जातिच्युत कर दिया गया हो।

यहाँ पर अग्रवाल जातिका उदाहरण उपयोगी है। अक्सर अग्रवालोंको महाराजा अग्रसेनके पुत्रोंसे उत्पन्न कहा जाता है। जैसा कि बदलूराम गुप्ता।[२२] का मत है, यह स्पष्ट ही तर्क संगत नहीं है। अग्रवाल शब्दकी उत्पत्ति अग्रोहाके कारण है, यह तो निश्चित है। यह हो सकता है कि किसी अग्रसेनके कारण अग्रोतक नाम हुआ हो। पर अगर यह सही है तो अग्रसेन व अग्रवाल जातिका कोई सीधा सम्बन्ध संभव प्रतीत नहीं होता। क्योंकि अगोदक नाम ई० पूर्व पहली-दूसरी शताब्दीके अवशेषोंमें पाया गया है जबकि अग्रवाल या किसी अन्य वैश्य जातिका ८ वीं शताब्दीके पूर्व अस्तित्व होनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

किसी जातिकी उत्पत्तिके बारेमें अनुसंधानमें निम्नलिखित नियम उपयोगी होंगे।

१. कुछ अपवादोंको छोड़कर लगभग सभी वैश्य जातियोंके नाम किसी विशेष स्थानके कारण पड़े हैं। अगर कोई स्पष्ट कारण न हो, तो सबसे पहले इस स्थानको पहचाननेका प्रयास किया जाना चाहिये।

२. कई बार इस मूलस्थानकी पहिचान किसी प्रख्यात स्थानसे की जाती है, पर ऐतिहासिक दृष्टि व गलत प्रमाणित होता है। इस पहिचानमें इस तथ्योंसे पुष्टि की जानी चाहिये।

(क) उस जातिका उस स्थानके आस-पास वास।

(ख) बहुतसे परिवारोंका उस स्थानके आस-पाससे आना।

(ग) जातिमें उस स्थानके आस-पासकी बोलीका चलन होना।

(घ) उस स्थानके आस-पाससे निकली अन्य समान जातियोंमें पंक्तिभोज या विवाह (द्विविधि या अनुलोम) की परम्परा।

(ङ) प्राचीन शिलालेखों या प्राचीन ग्रंथोंसे जातिका निवास उस स्थानके आस-पाससे प्रमाणित होना।

(च) अगर उस जातिमें स्थान-सूचक गोत्र हैं, तो ये गोत्र-स्थान आस-पास होना चाहिये।

इन नियमोंके उपयोगसे गलत निष्कर्षसे बचा जा सकता है। माहेश्वरी जातिके महेश्वर (इन्दौरके पास[१६]) अग्रवालोंकी आगरासे उत्पत्तिकी धारणा इनसे गलत प्रमाणित होती है। जैसवालोंकी जैसलमेरसे उत्पत्ति[२४] भी गलत है क्योंकि इस जातिका अस्तित्व जैसलमेरकी स्थापनाके पूर्व भी शिलालेखोंसे प्रमाणित होता है।

ऊपर दूसरे नियममें जो पाँच परीक्षण दिये हैं, उसमेंसे किसी एकके सही होने या न होनेसे कोई संभावित मूलस्थान सही या गलत सिद्ध नहीं होता। पर यदि सभी पाँच परीक्षण सही हैं, तब संभावित मूलस्थान करीब-करीब निश्चित है। किसी जातिकी उत्पत्ति कब हुई, इसका निर्धारण करना अधिक कठिन है। अगर किसी जातिकी उत्पत्ति किसी ऐतिहासिक घटनाके कारण हुई, तब केवल उस ऐतिहासिक घटनाके समयकी गणना करना काफ़ी है। उदाहरणके लिये चमारों में सतनामी जातिकी उत्पत्ति घासीदासके उपदेशसे हुई।[१६] सन् १८२५ के आस-पास ओसवाल जातिकी उत्पत्ति रत्नप्रभसूरिके उपदेश हुई। रत्नप्रभसूरिका समयका निर्धारण[१३] नहीं हो पाया है, पर ५वीं से १०वीं शताब्दीके बीच माना जाता है। अधिकतर जातियोंकी उत्पत्ति किसी एक विशेष समय नहीं हुई होगी। जो एक ही तरहके व्यवसाय, संस्कारके लोग एक ही स्थानपर अनेक पीढ़ियोंसे रहते होंगे, उनमें ही सजाति होनेकी भावना हुई होगी।[४२] इस प्रक्रियासे अधिकतर जातियोंकी रचना (evolution) में काफ़ी समय लगा होगा। अगर यह माना जाये कि सामान्यतः करीब ७ पीढ़ियों तकका पारिवारिक इतिहास याद रखा जाता है, तो किसी भी जातिमें एकत्व आने व उसके किसी नामसे प्रसिद्ध होनेमें कमसे कम ७ × २० = १४० वर्षोंका अन्तर माना जा सकता है। अगर यह कल्पना उचित है तो किसी जातिका अस्तित्व उसके सबसे पुराने उल्लेखसे कमसे कम डेढ़ सौ वर्ष पहले अवश्य रहा होगा।

गोत्रोंके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा जा सकता है। जातिकी उत्पत्ति पहले हुई या गोत्रोंकी? गोत्रोंके बिना जातिका अस्तित्व असंभव है। कुछ गोत्र जातिके पहले या जातिके साथ ही उत्पन्न हुये होंगे। कई बार एक ही गाँवमें रहने वालोंको एक ही पूर्वजसे उत्पन्न माना जाता है,[३७] और उस गाँवके नामसे ही एक गोत्र बन जाता है। गोत्र व्यवसायके कारण भी बनते हैं क्योंकि अक्सर लोग अपना पैतृक व्यवसाय ही सीखते थे।

ब्रिटिश राज्यके पहले गोलापूर्व जातिकी उत्पत्तिके बारेमें एक ही ग्रन्थमें उल्लेख मिलता है।[२५] मलहरा (जिला छतरपुर) के पास खटौरा ग्राममें नवलसाह चंदेरियाने ई० १७६९ में वर्धमान-पुराणकी रचना की थी। इसके अन्तिम अधिकारमें कविने अपने आत्मपरिचयके सिलसिलेमें गोलापूर्व जातिके बारेमें काफ़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है। इसके अनुसार किसी गोयलगढ़के निवासी, भगवान् आदिनाथके उपदेशसे श्रावक हुये व गोलापूर्व कहलाये। कविने इक्ष्वाकु वंशका उल्लेख किया है, यह स्पष्ट नहीं है कि यह शब्द आदि जिनेशके लिये प्रयुक्त है या गोयलगढ़के वासियोंके लिये।

यहाँ पर कविकी ऐतिहासिक जानकारीकी परीक्षा आवश्यक है जैसा कि आगे प्रमाणित किया

गया है। खटौरा ग्राम उस क्षेत्रमें स्थित है जहाँ गोलापूर्व प्राचीनकालसे रहते आ रहे हैं। कविने १३४ वर्ष पूर्व बुन्देले जुझार सिंह (१६२७-१६३५) के राज्यकालमे (ई० १६३४) में अपने पूर्वजों द्वारा गजरथ चलाये जानेका उल्लेख किया है, और तबसे अपनी वंशावली दी है। कविने इनके भी बहुत पहले (चतुर्थ काल) चंदेरीमें अपने पूर्वज गोल्हन शाहुका उल्लेख किया है। यह सही मालूम होता है क्योंकि चंदेरिया नाम चंदेरीमें रहनेके कारण ही पड़ा होगा, और बारहवीं शताब्दीके शिलालेखोंमें गल्हण, रल्हण, खेल्हण, कल्हण आदि नाम पाये गये हैं। कविने बुन्देलखण्डकी गहोई जातिको गृहपति कहा है और उनमें 'जैन लमार' का उल्लेख किया है। प्राचीन शिलालेखोंसे यह बात प्रमाणित होती है। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें गहोई जातिमें कोई भी जैन नहीं थे, वह अपने प्राचीन नामकी जानकारी संभवतः गहोई जातिमें भी नहीं थी।[२,१६]

स्पष्टतः गोलापूर्व जातिकी स्थापना भगवान् आदिनाथके समयमें असंभव है। पर किसी गोयलगढ़से उत्पत्ति संभव है। यति श्रीपालचन्द्रने चौरासी जैन जातियोंकी उत्पत्तिके स्थान दिये हैं। इसमें कई सही हैं, पर कुछ कल्पित मालूम होते हैं। इनमें गौलवाल जातिके लिये गौलागढ़ स्थान दिया है परन्तु गोयलगढ़की पहिचान नहीं हो सकी है। किसी-किसीने ग्वालियर माना है।[१५] परन्तु ग्वालियरके आसपास न तो गोलापूर्वों-के कोई शिलालेख पाये गये हैं, न वहाँ गोलापूर्वोंकी आबादी रहने का प्रमाण मिलता है। परमानन्द शास्त्रीने इसे चंदेरी के पास गोलाकोट (जिला गुना) माना है[२६] पर इस स्थानके आसपास भी न तो गोलापूर्वोंके शिलालेख मिलते हैं, और न ही गोलापूर्वोंकी विशेष जनसंख्या रही है। नाथूराम प्रेमी[१५] का अनुमान था कि इस जातिका उद्भव सूरतके आसपास कहींसे हुआ है, पर यह निश्चित ही गलत है।

गोलापूर्व शब्दकी कुछ अन्य उत्पत्तियाँ बतायी जाती हैं, पर वे स्पष्टतः कल्पनायें हैं। गोला (या गोल्ला) शब्द किसी स्थानका सूचक है, इस स्थानकी पहिचान एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रहा है। यहाँपर ये बातें विचारणीय हैं।

(१) जैनोंमें ही एक गोलालारे जाति है, इसे शिलालेखोंमें गोलाराडे कहा गया है। जिस प्रकार महाराष्ट्रके निवासी मराठे, सौराष्ट्रके निवासी सोरठे (सोरठिया) काराष्ट्रके निवासी कर्हाडे, उसी तरह गोलाराष्ट्र (अर्थात् गोला देश) के निवासी गोलाराडे कहलाये। इसी प्रकारके अहारके लेखोंमें गर्गराट जाति-का उल्लेख है।[२७] ये ही गंगराड होंगे जिनकी उत्पत्ति गंगराड स्थानसे बताई गई है।[२५] वर्तमानमें गंगेरवाल कहलाते हैं, इन्हें ही नवलसाहने गागड़ कहा है। गंगराड स्थान संभवतः वर्तमान गंगाधर (जिला झालवाड़) है।[२८]

(२) गोलसिंघारे (गोल शृंगार) भी गोला स्थानसे निकले होंगे।

(३) आगरा जिलेके आसपास एक गोलापूर्व ब्राह्मण जाति निवास करती है।[१५,२३] इसके अलावा दर्जियों व कलारों में भी गोलापूर्व नामके विभाग हैं।[१६] एक ही स्थानसे निकली अनेक जातियाँ अक्सर एक ही नामसे कहलाती हैं। ये उदाहरण दृष्टव्य हैं।[१६,२५]

(क) कनौजिया (कान्यकुब्ज, कन्नौजके) : ब्राह्मण, अहीर, बहना, भड़भूँजा, भाट, दहायत, दर्जी, धोबी, हलवाई, लुहार, माली, नाई, पटवा, सुनार व तेली।

(ख) जैसवाल [जैस (जिला रायबरेली) के] : बनिया, बरई, (पनवाड़ी) कुरमी, कलार, चमार व खटीक।

(ग) श्रीवास्तव (श्रावस्तीके) : कायस्थ, भड़भूंजा, दर्जी, तेली।

(घ) खंडेलवाल (खंडेलाके) : ब्राह्मण, बनिया।

(ङ) पल्लीवाल (पालीके) : ब्राह्मण, बनिया।

(च) श्रीमाल, श्रीमाली (श्रीमाल या भीनमालके) : ब्राह्मण, बनिया।

(छ) बघेल (बघेलखण्डके) : भिलाल, गोंड, धोबी, माली, पंवार।

(४) एक जैन धातु प्रतिमाकी स्थापकको गोलावास्तव्य लिखा गया है।[१५]

(५) आठवीं शताब्दीमें उद्योतनसूरि रचित कुवलयमालामें इन देश-भाषाओंका उल्लेख है—मगध, गोल्ला, मध्यदेश, आंध्र, अन्तर्वेदी, कोशल, मालव, कर्नाटक, सिन्धु, गुर्जर, मरु, महाराष्ट्र, ताजिक, टक्क और कीर।[३०] दसवीं शताब्दीके राजशेखरने काव्यमीमांसामें, पुष्पदंतने नयकुमारचरिउमें व बारहवीं शताब्दीके रामचन्द्र-गुणचन्द्रने नाट्यदर्पणमें भी यही देश-भाषायें लिखी हैं।[३०]

(६) चंद्रगिरि (श्रवणबेल्गोल) के एक ई० ११६३ के लेखमें गोल्लदेशके गोल्लाचार्यका उल्लेख है। इनके विषयमें आगे विचार किया गया है।

यह स्पष्ट है कि जैनोंमें गोलापूर्व, गोलालारे, गोलसिंघारे व अजैनोंमें गोलापूर्व ब्राह्मण, दर्जी व कलार, ये सभी किसी गोला (या गोल्ला) स्थानके वासी थे। इस गोल्ला देशकी स्थिति इतिहासमें एक महत्त्वपूर्व समस्या रही है। इस समस्या पर इस लेखमें आगे विचार किया गया है।

गोलापूर्व शब्दमें पूर्वका अर्थ क्या है। यह पूर्व दिशा-सूचक नहीं है। बुन्देलखण्डकी जैन जातियोंमें गोलापूर्व ही सबसे पूर्वके वासी थे। परन्तु गोलापूर्व ब्राह्मणोंका निवास उत्तर दिशामें है। पूर्व समयका सूचक है। पूर्वकालसे गोल्ला देशमें रहनेके कारण ही ये गोल्लापूर्व कहलाये। इसी प्रकारसे अयोध्यापूर्व जाति, जिसका वर्धमानपुराण व विजातीय-विवाह-मीमांसा[१३] में उल्लेख है, का नाम पड़ा होगा (यह अब अयोध्या-वासी कहलाती है)।

गोल्लादेशकी स्थिति

श्रावस्तीसे उद्भूत अनेक जातियोंका अस्तित्व होनेपर भी, श्रावस्ती कहाँ है, इसका स्मरण नहीं रहा था। श्रावस्ती (वर्तमान सहेठ-महेठ) की पहिचान ब्रिटिश राज्यकालमें उत्खनन होनेके बाद हुई। इसी प्रकारसे गोल्लादेशकी स्थिति कहाँ थी, इसकी स्मृति नहीं रही है, यद्यपि वहाँसे कई जातियाँ निकली हैं।

भारतमें गोला (या मिलते-जुलते) नामके अनेक स्थान हैं।[२] ग्वालियर व गोला कोटका उल्लेख पीछे किया गया है। उत्तर प्रदेशमें गोला नामके दो ग्राम गोरखपुर व खीरी जिलेमें हैं। गोलागोकर्णनाथ एक प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ है। उत्तर प्रदेशमें ही शाहजहानपुर जिलेमें गोलारायपुर नामका एक प्राचीन ग्राम है जहाँ बौद्धकालीन अवशेष पाये गये थे। दक्षिणमें कृष्णा जिलेमें गोलि व बेलग्राम जिलेमें गोलिहल्लि नामके स्थान हैं, पर इनमेंसे कोई भी उपयुक्त मालूम नहीं होता।

कुवलयमाला आदि ग्रन्थोंमें गोल्ला देशकी विशेष देश-भाषाका उल्लेख होनेसे मालूम होता है कि यह काफ़ी बड़ा क्षेत्र रहा होगा। कालान्तरमें इस प्रदेशका कोई अन्य नाम पड़ गया होगा, व गोल्ला देशकी स्मृति समाप्त हो गई होगी।

अगर गोलापूर्व, गोलालारे व गोलसिंघारे जातियोंके प्राचीन कालीन निवास स्थानका पता चल सके, तो गोल्लादेशकी स्थिति पर प्रकाश पड़ सकता है। यहाँपर उपरोक्त ५ नियमोंका प्रयोग किया जायेगा।

१. जातियोंका वर्तमान निवास : वर्तमान में गोलापूर्व व गोलालारे जातियाँ बिखरकर अनेक स्थानोंमें बस गई हैं। फिर भी गोलालारे जाति अधिकतर झाँसी (उत्तर प्रदेश) व भिंड (मध्य प्रदेश) के आसपास बसती है[१४] व गोलापूर्व मध्यप्रदेशके बुन्देलखण्ड भागमें (टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह) में बसते

हैं।[१५] सन् १९१५ की दिगम्बर जैन डायरेक्टरीसे मालूम होता है कि उस समयमें गोलालारोंकी सबसे अधिक जनसंख्या ललितपुर जिला झाँसी (४००) व भिण्ड (२७०) में बसती है। यह संभव है कि ये ललितपुरमें अच्छा व्यवसाय होनेके कारण अन्यत्रसे आकर बसे हों (कहावत है—ललितपुर कबहुँ ना छोडिये, जब तक मिले उधार)। इनका उद्गम कभी-कभी भिंडके आसपाससे माना जाता है, जो सही प्रतीत होता है।[३१] सन् १९४० की गोलापूर्व डायरेटरीके अनुसार गोलापूर्वोंकी सबसे अधिक जनसंख्या पुरानी ओरछा रियासतमें (१,६७८) अर्थात् टीकमगढ़ जिलेमें व सागर जिलेकी बंड़ा तहसीलमें (१,७३२) में थी। ये दोनों लगे हुए हैं। जैन तीर्थ आहार व कई अन्य जैन तीर्थ, इसी क्षेत्रमें हैं। दिगम्बर जैन डायरेक्टरी के अनुसार गोलसिंघारे सबसे अधिक इटावा उत्तर प्रदेश (२९८) में बसे हैं।[१४]

२. गोलापूर्व बुन्देलखंडके आंतरिक भाग (अहारके आसपास) से ही अन्यत्र जाकर बसे हैं, ऐसा प्रतीत होता है।[२५] सागरके फुसकेले सिंघई लगभग १२५ वर्ष पहले मदनपुर (जि० झाँसी) से आये थे। पाटन (जि० सागर) के रांधेले सिंघई कई पीढ़ियों पहले अहारसे आकर बसे हैं। हटा (जि० दमोह) के टैंटवार सिंघई बमनी (जि० छतरपुर) से करीब २०० वर्ष पहले आये थे। रीठी (जि० जबलपुर) के पड़ेले १२५ वर्ष पहले पठा (जि० टीकमगढ़) के वासी थे। कटनीके पटवारी कोठिया करीब ९० वर्ष पहले गोरखपुरासे आये थे। इन परिवारोंके सदस्य अब अनेक अन्य स्थानोंमें जाकर बस गये हैं। सन् १९०२ के दमोह गजेटियरके अनुसार दमोहके गोलापूर्व टीकमगढ़-टेहरीके आसपाससे आये हैं।

३. सभी गोलापूर्वोंमें बुन्देलखंडी बोलनेका ही चलन है। जो बुन्देलखण्डके बाहर कई पीढ़ियोंसे हैं, वे खड़ी बोली बोलने लगे हैं।

४. बुन्देलखण्डकी सभी जैन जातियोंमें परस्पर पंक्तिभोजका व्यवहार रहा है। परवार-मूर-गोत्रावली व वर्धमान पुराणमें साढ़े बारह समकक्ष जैन जातियाँ कहीं हैं जिनमें परवार, गोलापूर्व, गोलालारे व गोलसिंघारे शामिल हैं। गोलापूर्वों व परवारों में कभी-कभी विवाह सम्बन्ध भी हुआ करता था।[१६] एकबार एक प्रस्ताव रखा गया था कि पचविसे गोलापूर्वोंके गोलालारे जातिमें मिला लिया जाये (पर मान्य नहीं हुआ था)[१३]। बुन्देलखण्डकी जैन जातियोंमें कुछ गोत्रोंके नाम एकसे हैं। पंचरत्न गोत्र गोलापूर्व, गोलालारे व परवार तीनों जातियोंमें है।[१८] इस सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये जातियाँ एक-दूसरेके आस-पास ही निवास करती होंगी।

गोलापूर्व जातिके प्राचीन शिलालेख अहारक्षेत्रके आस-पास बड़ी संख्यामें पाये गये हैं। पपौराजीमें ई० ११४५ के, नावईमें ई० ११४६ का, अहारजीमें ११४६ व ११५६ के, छतरपुरमें ११४९ का, ललितपुरमें ११८६ का, महोबामें ११६२ व ११८६ के लेख[१८] पाये गये हैं। इस क्षेत्रमें कई अनेक अन्य शिलालेख पाये गये हैं, जिनपर किसी जातिके नामके उल्लेख नहीं हैं, इनमेंसे कई गोलापूर्वोंके होंगे। महोबामें एक कुँआ खोदते समय २४ जैन प्रतिमायें प्राप्त हुई थीं[१५]। इनमेंसे उपरोक्त एक पर सं० १२१९ (ई० ११६२), दो पर सं० १२४३ (ई० ११८६) पर गोलापूर्वान्वयके उल्लेख हैं। चार अन्य पर सं० ८२२, सं० ८३१, सं० ११४४ (ई० १०८७) व सं० १२०९ (ई० ११५२) के लेख हैं, पर किसी जातिका उल्लेख नहीं है। सं० ८३१ व सं० ८२२ के लेखोंका संवत् विक्रम सं० (ई० ७६५ व ७७४) या शक सं० (ई० ९०० व ९०९) हो सकता है[६]। पर यह भी हो सकता है कि ये कलचुरि सं० हों (ई० १०७१ व १०८०)। इस समयके आसपास कलचुरि-चेदिके कर्णदेवने चंदेलोंके राज्यपर कुछ वर्षोंके लिये अधिकार कर लिया था। कुछ ही वर्षों बाद चंदेल कीर्तिवर्माने पुनः अधिकार कर लिया था।

यहाँपर बहोरीबंदके लेखका उल्लेख आवश्यक है। यह जैजाकभुक्ति (चंदेलोंके राज्य) के बाहर डाहल मंडल (कलचुरि-चेदि राज्य) में था। यहाँ शांतिनाथकी प्रतिमापर एक लम्बा,प्रसिद्ध लेख है, पर उस पर संवत् स्पष्ट नहीं पढ़ा गया है। किसी-किसीने इसे वि० सं० १०१० (ई० ९५४) पढ़ा है[३१]। इसमें गयाकर्णदेव सामन्त गोल्हणदेवके समयमें गोलापूर्वाम्नायके, माधवनन्दिके अनुयायी साधु महाभोजद्वारा शांतिनाथके मंदिरके निर्माणका उल्लेख है। यहाँ "गोलापूर्वाम्नाये" शब्द महाभोजके लिये प्रयुक्त लगता है। वैसे जैसे उपकेशगच्छ व ओसवाल जाति दोनों ओसियासे उद्भूत हैं, हो सकता है गोलापूर्वाम्नाय कोई गच्छ या गण रहा हो। कलचुरि राजा गयाकर्ण वही हैं जिनका विवाह गुहिल विजयसिंहकी पुत्री अल्हणदेवीके साथ हुआ था'। चंदेल मदनवर्माने किसी चेदि राजाको हराया था, इसे गयाकर्ण ही माना गया है"। गयाकर्णका समय ई० ११२३ से ११५३ माना गया है। यह स्पष्ट है कि यह लेख वि० सं० १०१० का नहीं हो सकता।

यह स्पष्ट है कि बारहवीं शताब्दीके मध्यमें गोलापूर्व जाति काफ़ी दूरतक फैलकर बस चुकी थी। अहारके ई० १२३१ के लेखमें "प्रख्यातवंशे गोलापूर्वान्वये" लिखा गया है[३२]। इससे यह माना जा सकता है कि गोलापूर्व जाति बारहवीं शताब्दीसे कई सौ वर्ष पहले विद्यमान थी।

गोलाराडे जातिके लेख ग्यारहवीं शताब्दीके अन्तसे मिलते हैं।[१७] भिंडके आसपास इनके प्राचीन लेख पाये गये हैं या नहीं, यह ज्ञात नहीं हो सका है। गोलसिंघारे जातिके ई० १६३१ के पूर्व उल्लेख देखनेमें नहीं आये।

५. गोलापूर्व जातिमें कुछ गोत्र कुछ स्थानोंके नामपर हैं। चंदेरिया, पपौरहा, मरैया, भरतपुरिया, भिलसैया, जतहरिया, धवलिया, बदरौहिया, हीरापुरिया; कनकपुरिया, पटोरिया, दर्गैया, सिरसपुरिया व गड़ौले ग्रामके नामपर ही हुए हैं। चंदेरिया चंदेरी (जि० गुना), पपौरहा पपौरा (जि० टीकमगढ़); हीरापुरिया हीरापुर (जि० सागर), धमोनिया धामोनी (जि० सागर) व मरैया मरौरा (जि० झाँसी) के वासी थे। भिलसैया सम्भवतः उसी भेलसी ग्रामके वासी थे जहाँ नवलशाह चंदेरियाके पूर्वज रहते थे। अन्य ग्रामोंकी पहिचानके लिये शोधकी आवश्यकता है। गोलालारे जातिमें चिनौरिया, जसौरिया, जैपुरिया, नागपुरिया, पचमढ़िया आदि गोत्र हैं, पर सम्बन्धित ग्राम पहिचानमें नहीं आये हैं।[१८]

उपरोक्त पाँच नियमोंपर विचारसे ये निष्कर्ष निकलते हैं (मानचित्र—१)।

१. गोलापूर्व : गोलापूर्व जातिका मूलस्थान पपौरासे धामोनी (करीब चालीस मील) व आसपास निश्चित है। यह टीकमगढ़ व छतरपुरका दक्षिणी भाग व बंडा तहसीलका उत्तरी भाग है। इस क्षेत्रमें ही पपौरा, अहार, द्रोणागिरि व नैनागिरि जैन तीर्थ हैं।

२. गोलालारे : इस जातिका मूलस्थान भिंडके आसपास प्रतीत होता है। इसे निश्चित करनेके लिये शोधकी आवश्यकता है।

३ गोलसिंघारे : ये भी भिंडके आसपाससे उत्पन्न लगते हैं। इनके प्राचीन लेख न मिलनेसे लगता है कि सम्भवतः ये गोलालारे जातिकी ही शाखा हैं।

गोलापूर्व ब्राह्मणोंके बारेमें विशेष जानकारी नहीं मिल सकी है। ये भिंडके उत्तरमें आगरा व इटावा जिलेमें अधिकतर रहते हैं। सन् १९४० में ये अपनी जनसंख्या ३-४ लाख बताते थे।[१९] परन्तु जनसंख्याके अनुमान अक्सर गलत होते हैं। यथा अग्रवालोंकी जनसंख्या एक करोड़ बताई गयी है जो स्पष्टतः असम्भव है।[२२] फिर भी गोलापूर्व-ब्राह्मणोंकी वर्तमान जनसंख्या कम-से-कम ६०-८० हजार होना चाहिये। इनकी उत्पत्तिके बारेमें कुछ किंवदन्तियाँ हैं, पर वे काल्पनिक ही मालूम होती हैं। इन्हें सन्नाढ्य ब्राह्मणोंसे उद्भूत

मानचित्र : १

गोलापूर्व, गोलालारे, गोलसिंघारे व परवार जातियों के प्राचीन निवास-क्षेत्र

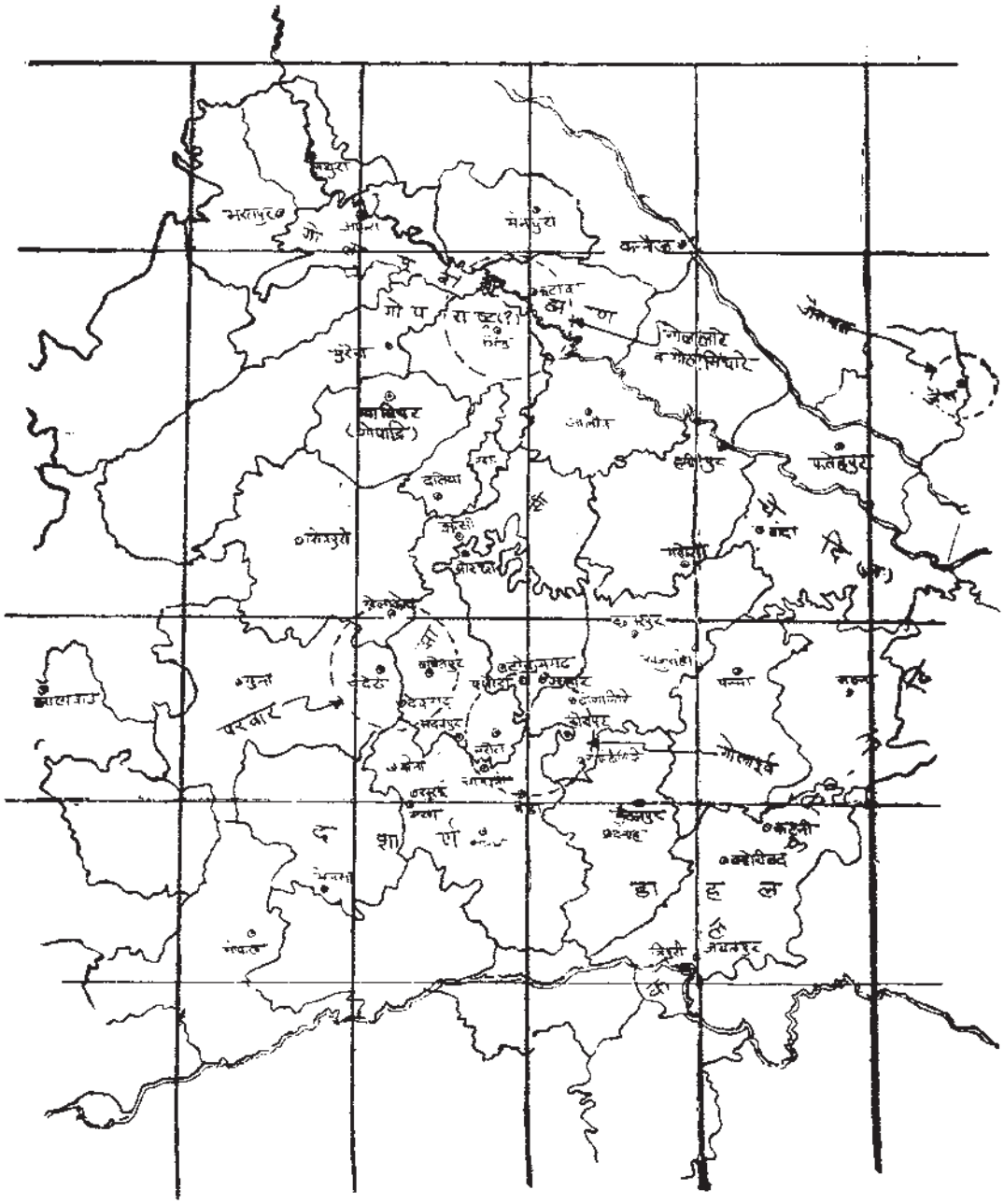

माना जाता है[३७], जो सही प्रतीत होता है। इनका गोलापूर्व जैनोंके साथ क्या सम्बन्ध है इसपर आगे विचार किया गया है। गोलापूर्व दर्जियों व कलारोंके बारेमें कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। गोलापूर्व डायरेक्टरीमें गोलापूर्व क्षत्रियोंका उल्लेख है, पर ऐसा लगता है इनका अस्तित्व नहीं है। गोलापूर्व ब्राह्मण कृषक हैं, उनके ही किसी समुदायको भ्रमसे क्षत्रिय मान लिया गया होगा।

गोल्ला देशकी स्थितिका निश्चित प्रमाण श्रवणबेल्गोलाके दो लेखोंसे होता है। ये लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं व इनसे न केवल गोल्ला देशकी स्थिति, बल्कि बुन्देलखण्डके इतिहासपर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। चन्द्रगिरिपर स्थित ई० ११६३ के एक लेखमें गोल्लदेशके गोल्लाचार्यका उल्लेख है। ई० १११५ के एक अन्य लेखमें "चंदिल" कुलके, गोल्लदेशके भूपालका उल्लेख है। "चंदिल" निस्संदेह चंदेल कुलके लिये है। गोल्लदेश वही देश है जहाँ चंदेलोंका राज्य था।

चन्देलोंका राज्य अक्सर जैजाकभुक्ति कहलाता है। अलबिरूनीने लगभग ई० १०३० इसे जजहूति कहा है।[३१] यह नाम चन्देल जयशक्ति (लगभग ई० ८५५) के कारण पड़ा था जिसे जैज्जाक भी कहते थे।[३२] इसी क्षेत्रका दूसरा व प्राचीनतर नाम गोल्लादेश था। ई० १५३१ में ओरछापर बुन्देलोंका राज्य हो जानेके कारण यह कालान्तरमें बुन्देलखण्ड कहलाया।

गोल्लाचार्य कौन थे? ई० १११७ में, या उसके पूर्व चन्देल जयवर्मा गद्दीपर बैठे थे। जयवर्माने थोड़े ही समय बाद गद्दी छोड़ दी व उसके चाचा पृथ्वीवर्माका राज्य हुआ। पृथ्वीवर्माके पुत्र मदनवर्माके राज्य-कालके ई० ११२९ से ११६३ तक लेख मिलते हैं। मदनवर्माके बाद उसका पौत्र परमार्द्धि (परमाल) का राज्य हुआ जिसके ई० ११६५ से १२०१ तकके लेख मिलते हैं। हो सकता है जयवर्माने दीक्षा ली हो और उन्हें ही गोल्लाचार्य कहा गया हो। परन्तु सबसे अधिक सम्भावना मदनवर्मा की है। इस सम्भावनापर आगे विचार किया गया है।

चन्देलोंके राज्यका विस्तार कभी कम, कभी अधिक रहा है। खजुराहोंके ई० ९५५ के लेखमें धंगका राज्य उत्तरमें यमुनासे लेकर दक्षिणमें चेदिकी सीमातक, पूर्वमें कालंजरसे पश्चिमो गोपाद्रि (ग्वालियर) व भेलसा (विदिशा) तक लिखा गया है।[७] मदनवर्माके लेखोंके विस्तारसे पता चलता है कि उसका राज्य खजुराहो, महोबा व कालंजर के अलावा भेलसा मउ (जि० झाँसी) तक रहा था। चन्देलोंके राज्यका अस्थाई विस्तार उत्तर-पश्चिममें कान्यकुब्ज व अहिच्छत्र तक रहा था।[८] यह प्रतीत होता है कि चन्देलोंका राज्य ग्वालियर, भिंडके आसपास कभी रहा था, पर स्थायीरूपसे नहीं।

बुन्देलखण्ड वह क्षेत्र कहलाता है जहाँ बुन्देलोंका राज्य रहा था। मध्य प्रदेशमें इसके दतिया, टीकम-गढ़, छतरपुर व पन्ना जिले हैं। सागर व दमोह जिलोंके उत्तरी भाग भी बुन्देलखण्डमें हैं। उत्तर प्रदेशमें झाँसी, हमीरपुर व बाँदा जिले बुन्देलखण्डमें माने जाते हैं। ग्वालियरके पास दतिया जिलेमें भी बुन्देलोंका राज्य रहा है। भिंड, इटावा व आगरा जिलेकी भाषा बुन्देली नहीं ब्रज मानी जाती है। अगर गोल्लादेशमें एक ही देशभाषा थी तो वहाँ वर्तमानमें दो बोलियाँ कैसे हो सकती हैं? वास्तव में बुन्देली व आगरा-भिंडकी बोली लगभग एक ही हैं। इन्हें "पश्चिमी हिन्दी" कहा गया है।[९] यह बात ग्वालियरके लिये भी लागू होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गोल्लादेशका विस्तार उत्तर,दक्षिणमें भिंडसे सागर जिलेके उत्तरी भागतक था।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्डके ब्राह्मण गोलापर्व नहीं कहलाते। इसका कारण स्पष्ट है। बुन्देलखण्डमें कान्यकुब्जसे ब्राह्मण आकर बसते रहे हैं। चन्देलोंके राज्यमें यह भाग जैजाकभुक्ति कहलानेसे,

यहाँके ब्राह्मण जिझौतिया कहलाने लगे। जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण पिछले सौ-दो सौ सालसे आकर बसे हैं, वे अपनेको कान्यकुब्ज ही कहते हैं व जिझौतियासे अपनेको ऊँचा मानते हैं। गोल्लादेशका जो भाग जैजाकभुक्ति नहीं कहलाया वहाँके ब्राह्मण गोलापूर्व कहलाते रहे।

कुवलयमाला आदि ग्रन्थोंसे पता चलता है कि ८वींसे १२वीं शताब्दीके आसपास भारतके अधिकांश भागमें करीब १८ प्रमुख देश भाषायें बोली जाती थीं। इनमेंसे सभीकी पहिचान की जा सकती। वर्तमान भारतीय बोलियों व भाषाओंसे इनका काफ़ी मेल लगता है। यहाँपर Historical Atlas & South Asia में के मानचित्रोंका प्रयोग किया गया है।

आंध्र : वर्तमान तेलुगू भाषाका क्षेत्र अर्थात् आंध्र प्रदेश।

कर्णाटक : वर्तमान कन्नड भाषी प्रदेश, कुछ उत्तरी भागको छोड़कर समस्त कर्णाटक प्रदेश।

सिंधु : सिंधी भाषी। मुलतानको छोड़कर व कच्छको मिलाकर पाकिस्तानका सिंध प्रदेश।

गुजर : गुजराती क्षेत्र। गुजरातका अधिकतर भाग व राजस्थानका थोड़ासा भाग।

महाराष्ट्र : मराठी भाषी। गोआ, कर्णाटकका कुछ उत्तरी भाग। विदर्भका काफ़ी भाग गोंड आदि जातियोंसे बसा था, व महाराष्ट्रका भाग नहीं माना जाता था।

ताजिक : वर्तमान सोवियत संघ व चीनमें ताजिक भाषी प्रदेश। प्राचीनकालमें यहाँके यारकन्द व खोतान आदि में पंजाब आदिसे व्यापारिक सम्बन्ध थे व भारतीय संस्कृतिका काफ़ी प्रभाव था।

टक्क : पंजाबी भाषी पाकिस्तानी व भारतीय पंजाब सम्भवतः हरियाणाका कुछ भाग। मुलतानको भी इसी क्षेत्रमें माना जाना चाहिये।

मरु : राजस्थानी (मारवाड़ी) प्रवेश। वर्तमानमें मारवाड़ी व मालवीको सम्बन्धित माना जाता है। राजस्थानमें अरावलीके दक्षिणकी भाषाको मालवी माना जाना चाहिये। ब्रज-भाषी प्रदेशमें इस क्षेत्रके बाहर माना जाना चाहिये।

मालव : वर्तमान मालवा व दक्षिणी राजस्थान।

मगध : बिहारी व भोजपुरी (पूर्वी उत्तर प्रदेश) भाषी प्रदेश।

कोशल : कोशल नामक दो स्थान थे। एक तो काशीके आसपास और एक मध्य प्रदेशके छत्तीसगढ़ क्षेत्रमें, जो दक्षिण कोशल कहा जाता है। वर्तमानमें दोनों क्षेत्रकी भाषायें पूर्वी-हिन्दीके अन्तर्गत आती हैं। अतः कोशल देश-भाषाका क्षेत्र, पूर्वी-हिन्दी (अवधी, बघेली व छत्तीसगढ़ी) का क्षेत्र ही माना जाना चाहिये। इसमें छत्तीसगढ़ीका दक्षिणी भाग नहीं माना जाना चाहिये जहाँ गोंड आदि जातियोंका निवास था।

मध्यदेश : इस शब्दका प्रयोग उत्तर-भारतके काफ़ी भागके लिये किया जाता था। देश-भाषाओंके संदर्भमें, यह स्पष्ट ही यह वर्तमान पश्चिमी-हिन्दी (हिन्दुस्तानी, ब्रज व बुन्देलखण्डी) क्षेत्रका उत्तरी भाग है जहाँ खड़ी बोली बोली जाती है।

अन्तर्वेद : यह गंगा-यमुनाके बीचका दोआब है। दोआबेके अधिकतर भागकी देश-भाषाकी ही यह संज्ञा होगी।

गोल्ला : उपरोक्त क्षेत्रोंको निकाल देनेसे एक ही भाग बचता है—यमुना व नर्मदाके बीचका पश्चिमी हिन्दीका भाग, जिसमें ब्रज व बुन्देली बोली जाती है। इसके अधिकतर भागकी राजनैतिक गोल्लादेशसे पहिचान ऊपरको ही जा चुकी है।

मानचित्र—२ में ये सभी क्षेत्र दिखाये गये हैं। दक्षिणी मध्यप्रदेश, विदर्भ व उड़ीसाके काफ़ी बड़े भूखण्डमें आज भी बड़ी संख्यामें गोंड आदि आदिवासी बसते हैं। प्राचीनकालमें इस क्षेत्रमें न तो महत्त्व-

मानचित्र : २

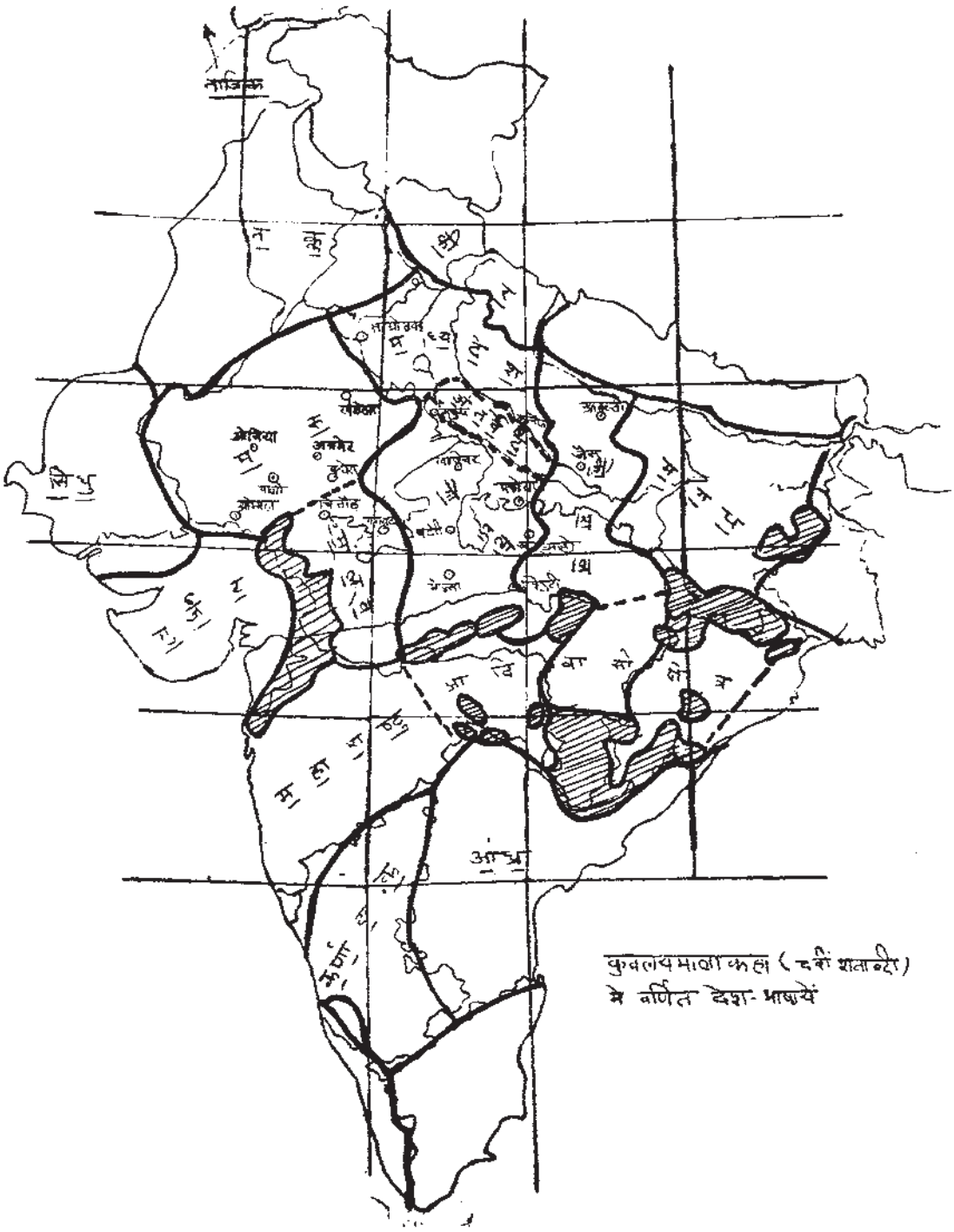

कुवलयमाला कहा (८वीं शताब्दी)
में वर्णित देश-भाषायें

पूर्ण स्थान थे न ही अधिक आवागमन था। सम्भवतः इसी कारणसे इस क्षेत्रको उपरोक्त देशभाषाओंमें शामिल नहीं किया गया। बंगाल, उत्कल, तमिलनाडु व केरल दूरस्थ होनेके कारण उपरोक्त सूचीमें नहीं जोड़े गये। यहाँपर एक भ्रांतिका निराकरण आवश्यक है। महाभारतमें व बौद्ध ग्रन्थोंके सोलह महाजनपदोंकी सूचीमें चेदिका उल्लेख है। इसे लेखकोंने बुन्देलखण्ड माना है।[३३,३४] परन्तु यह सही प्रतीत नहीं होता। चेदि जातिका प्राचीन स्थान कुरु (दिल्लीके आसपास) व वत्स (कौशाम्बी के आसपास) के बीच, यमुनाके किनारेपर था, व इसकी राजधानी शुक्तिमति (या सोत्थिवती) थी जो वर्तमान बाँदा जिलेमें है। इनकी ही एक शाखा कलिंगमें जा बसी, जिसमें महामेघवाहनका प्रतापी वंशज खारवेल (ई० पू० प्रथम शताब्दी) हुआ। ई० ५८० से १२१० के बीच कलचुरिया वंशका राज्य (जबलपुर, सतना आदि जिले) चेदि कहलाया।

बाँदा जिलेकी भाषा बुन्देली नहीं है, बल्कि पूर्वी हिन्दी है। कलचुरियोंके राज्य क्षेत्रकी वर्तमान भाषा बघेली व छत्तीसगढ़ी है। वर्तमान बुन्देलखण्डका थोड़ासा ही भाग प्राचीन चेदि जनपदमें था। कलचुरियोंका बुन्देलखण्डपर राज्य बहुत ही थोड़े समयके लिये था। स्पष्ट है, बुन्देलखण्डका अधिकांश भाग चेदि कभी नहीं कहलाया। सम्भवतः केन नदी चेदिकी पूर्वी सीमा मानी जानी चाहिये।

गोल्लादेशका इतिहास

गोल्लादेशके उल्लेख बहुत कम मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण नवमीं-दसवीं शताब्दीमें इसका नाम बदलकर जैजाकभुक्ति हो जाना रहा था। गोल्लादेश नाम कैसे हुआ व कब हुआ, ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं।

भारतमें कई प्रदेशोंका नाम शासक जातियोंके कारण पड़ा है। गुजरात (व पंजाबमें गुजरात नामक विभाग) गूजर या गुर्जर जातिके कारण हुआ है। मालवा मालव-जातिके कारण, आंध्र आंध्र-जातिके कारण कठियावाड़ काठी जातिके कारण व सौराष्ट्र सौराष्ट्र-जातिके कारण कहलाये। रुहेलखंड, बुंदेलखंड, बघेलखंड, गोंडवाना, राजपूताना आदि नाम भी जातियोंके कारण हुए। यह प्रतीत होता है कि गोल्ला देश भी किसी प्राचीन गोल्ला जातिके कारण कहलाया। इन सभी स्थानोंमें प्राचीन कालमें राज्य करने वाली जातियोंके अलावा बहुत सी अन्य जातियाँ रहती हैं जिनका प्राचीन राज्यकरने वाली जातियोंसे कोई संबंध नहीं है। उदाहरणके लिये गुजरातकी अधिकतर जातियोंका गूजरोंसे कोई संबंध नहीं हैं, फिर भी वे गुजराती या गुर्जर कहलाती हैं। इसी प्रकारसे प्राचीन गोल्ला जातिका बुन्देलखंडकी जैन जातियोंका कोई संबंध नहीं है।

गोल्ला संस्कृतके गोप या गोपालका ही रूप है। हिंदीमें गोपालका रूपांतर ग्वाल है। दक्षिण भारतमें गोपालका रूपांतर गोल्ला है, वहाँ की कई जातियोंके चरवाहे गोल्ला कहलाते हैं। प्राचीन कालमें गोप जातिका उल्लेख श्रीकृष्णके साथ हुआ है।

गोप जाति व आभीर जाति प्राचीन कालमें एक ही थीं या नहीं, यह कहना मुश्किल है। आभीर जातिका उल्लेख पातंजलिके महाभाष्यमें, महाभारतमें व प्राचीन यवन (ग्रीक) लेखकों द्वारा भी हुआ है। ई० १८१ के एक लेखमें शक महाक्षत्रप रुद्रसिंहके आभीर सेनापति रुद्रभूतिका उल्लेख है। आभीर राजा ईश्वरसेनके कालमें किसी शक महिला द्वारा दिये दानका उल्लेख है। पुराणोंमें ६७ वर्ष जिन १० आभीर राजाओंका उल्लेख है, वे शायद ईश्वरसेनके ही वंशके हों। किसी-किसीके मतसे इसने ही कलचूरि संवत् चलाया था[३३]। समुद्रगुप्तके ई० ३५०के लेखमें आभीर आदि जातियोंपर शासनका उल्लेख है। ई० १२०० के एक लेखमें देवगिरिके यादव सिंघण-त्रिभुवनमल्लके सेनापति खोलेश्वर द्वारा आभीर आदि जातियोंपर विजयका उल्लेख है। ई० छठवीं शताब्दीमें गोप व आभीर शब्दोंका समान अर्थमें उपयोग होने लगा। वर्तमानमें अहीर या ग्वाल भारतके कई भागोंमें बड़ी संख्यामें रहते हैं[८]। आभीरोंका राजपूतोंसे प्राचीन कालसे

संबंध रहा है। हो सकता है कि कुछ राजपूत कुल आभीरोंसे ही निकले हों। राजपूतोंमें एक गोला जाति है जो राजपूत राजपरिवारोंकी सेवा करती थी[५]। बुन्देलखंडके अहीरोंमें एक दौआ अहीर होते हैं। बुन्देले राजपूतोंमें इसी जातिकी दाईयाँ रखी जाती थीं।[१६]

गोल्ला देश नाम प्राचीन कालमें ग्वालोंके कारण पड़ा, इसका संकेत इन तथ्योंसे मिलता है।

१, आगरा जिलेमें व आसपास काफी अहीर बसते हैं।[८]

२. ई० १९३१ की जनगणनाके अनुसार, टीकमगढ़ जिले (ओरछा रियासत) में भूस्वामी जातियोंमें अहीर सर्वाधिक हैं।[८]

३. झाँसी जिलेका एक दक्षिणी भाग अहीरवाड़ कहलाता है।[१६/३३]

४. सागर जिलेमें खुरईके आसपास ग्वालोंका राज सत्रहवीं शताब्दीके अंत तक रहनेकी जनश्रुति है।[१६]

गोल्लादेश नाम कितना प्राचीन है? महाभारतके भीष्मपर्वमें बहुत बड़ी संख्यामें जनपदोंके नाम दिये गये हैं।[३४] इनमें दोके नाम गोपालकच्छ व गोपराष्ट्र हैं। गोपालकच्छ कच्छके आसपासका कोई स्थान होगा जहाँ गोप जातिका प्रभाव रहा होगा। गोपराष्ट्र गोलाराडका संस्कृत रूप मालूम होता है। यह वही स्थान होना चाहिये जहाँसे गोलाराडे (गोलालारे) जाति निकली है। कालांतरमें गोल्ला देशकी सीमा दशार्ण (भेलसाके आसपास) तक फैल गई।

यहाँ ग्वालियरका उल्लेख आवश्यक है। ग्वालियर शब्दकी उत्पत्ति किसी ग्वालिप ऋषिसे बताई जाती है। पर प्राचीन लेखोंमें इसे गोपाद्रि या गोपाचल कहा गया है। ये ग्वाल-गढ़के ही संस्कृत रूपांतर हैं।[५] यह ग्वाल जातिके कारण ही ग्वालगढ़ या गोपाद्रि कहलाया है। ग्वालियरके जिलेमें प्राचीनतम लेख हूण (शक) तोरमाण व उसके पुत्र मिहिरकुलके है। तोरमाण पंजाबमें शाकल स्थानका राजा था, स्कंदगुप्तकी मृत्युके बाद उसने भारतके मध्य-भागपर अधिकार कर लिया। कुवलयमाला-कहा (ई० ७७९) के अनुसार तोरमाण हरिगुप्त नामके जैन आचार्यका अनुयायी था। इसके एरण (जि० सागर) के पास ई० ४९५ का लेख व सिक्के मिले हैं।

ई० ५३२ के आसपास कोस्मस इंडिकेप्लूस्तेस नामके ग्रीक लेखकने अरब, फ़ारस, भारत आदि देशोंकी यात्राका विवरण लिखा है।[३५] इसने "गोल्लास्" नामके किसी शक्तिशाली राजाका उल्लेख किया है। ग्रीक भाषामें नामोंके बाद स् लगता है (जैसे संस्कृतमें विसर्ग लगती है), इस कारणसे नाम गोल्ला होना चाहिये। इतिहासकारोंका अनुमान रहा है कि यह राजा मिहिरकुल ही है जिसे ई० ५३३ के एक लेखके अनुसार यशोधर्माने परास्त किया था। मिहिरकुल शब्दके कुल या गुलसे ही गोल्ला शब्द बना था, ऐसा अनुमान किया गया है। परन्तु उपरोक्त अध्ययनसे यह अधिक संभव लगता है कि मिहिरकुलको गोल्ला देशका अधिपति होनेके कारण गोल्लास् कहा गया हो।

नौवीं शताब्दीके आरंभमें गोल्लादेशके अधिकतर भागपर चंदेलोंका अधिकार हो गया। चंदेलोंकी उत्पत्ति स्पष्ट नहीं है, पृथ्वीराजरासोके महोबाखंडमें इनकी उत्पत्तिके बारेमें एक कहानी बताई गई है, पर वह काल्पनिक है। कुछ इतिहासकारोंका अनुमान है कि इनकी उत्पत्ति गोंड जातिसे हुई थी। यह अनुमान इनका विवाह संबंध गोंडोंके साथ होते रहनेसे किया गया है। आरंभमें ये गुर्जर-प्रतिहारोंके अधीन थे, पर ई० ९५५ के आसपास स्वतंत्र हो गये। इनकी राजधानी महोबा व खजुराहोमें थी जहाँ इनके बनवाये अनेक भव्य हिंदू मंदिर विद्यमान हैं, कालंजरके प्रसिद्ध किलेपर इनका अधिकार था। धंग (लगभग, ई० ९५५-१००२) व विद्याधर (लगभग ई० १०१९-१०३७) के समयमें इनके राज्यका काफ़ी विस्तार हुआ। ग़जनीके सुबुक्तगीनने जब भारतपर आक्रमण किया, तब धंगने लाहौरके जयपाल आदि भारतीय राजाओंके साथ

मिलकर उसका मुकाबिला किया था। इनके राज्यका अधिकतम विस्तार उत्तरमें अहिच्छत्रसे मिथिला तक व दक्षिणमें नर्मदा नदी तक रहा था[८], पर स्थायी अधिकार बुन्देलखंडके आसपास ही रहा था। यही भाग जैजाकभुक्ति कहलाया।

अनेक चंदेल राजाओंके समयमें जैन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा हुई। मदनवर्माके राज्य कालमें प्रतिष्ठित जैन मूर्तियोंकी संख्या आश्चर्यजनक है। अहारका प्राचीन नाम मदनसागर या मदनेशसागर था। यह स्थान मदनवर्माके द्वारा ही बसाया गया प्रतीत होता है। इस स्थानपर गोलापूर्व, जैसवाल, गृहपति, पौरपाट, खण्डेलवाल, मेडवाल, लमेंचू, मइडित, माधुव, गोलाराड, गर्गराट, वैश्य, माथुर, महेशपउ (माहेश्वरी), देउवाल व अवधपुरा इन जातियों द्वारा प्रतिष्ठापित जैन मूर्तियाँ पाई गई हैं।[२७] दूर-दूरसे आकर यहाँ जैनोंने प्रतिष्ठायें क्यों कराईं, यह स्पष्ट नहीं है। किसी भी अन्य स्थानपर इतनी सारी जैन जातियोंके लेख नहीं मिले हैं। हो सकता है कि किसी कारणसे यह प्रसिद्ध तीर्थ बन गया हो या व्यापारका केन्द्र हो गया हो। यह तो स्पष्ट है कि मदनवर्मा जैनधर्मका संरक्षक था। यह सम्भव है कि मदनवर्मा ही वह चन्देल नरेश हो जो दीक्षा लेकर गोल्लाचार्य कहलाया। एक महत्त्वपूर्ण राजवंशके नरेश द्वारा जैन दीक्षा लिया जाना असम्भव नहीं है। मान्यखेटके राष्ट्रकूट अमोघवर्ष (ई० ८१४-८७८) जिनका राज्य दक्षिणापथके अधिकतर भागपर था, ने भी ई० ८६० के आसपास राजपाटका त्याग कर दिया था व सम्भवतः दीक्षा ले ली थी।[२६] मदनवर्माके समयमें ही गुजरात व राजस्थानके शासक अणहिलपाटकके चालुक्य कुमारपाल (ई० ११४३-११७२) जैनधर्मके पालक व महान् संरक्षक थे।[७] यदि मदनवर्मा ही गोल्लाचार्य थे, तब जैन दीक्षा धारण करने वाले अन्तिम मुकुटबद्ध (स्वतंत्र) राजा मदनवर्मा थे, न कि चन्द्रगुप्त मौर्य (जैसा कभी-कभी माना जाता है)। जैनधर्मकी रक्षाका श्रेय गुजरात-मारवाड़में कुमारपालको व दक्षिणमें अमोघवर्षको दिया जाता है। सम्भव है, बुन्देलखण्डमें जैनधर्मकी रक्षा मदनवर्मा द्वारा हुई हो।

मदनवर्माके पुत्र परमार्द्धि (या परमाल) के कालमें चाहमान पृथ्वीराजने आक्रमण किया। इसका विवरण पृथ्वीराज-रासो व आल्ह-खंडमें हुआ है। कालान्तरमें इनकी शक्तिका क्षय हो गया। ई० १३१५ के आसपास हुए वीरवर्माके बाद इनकी हैसियत जमींदारों जैसी ही रह गई। गढ़मंडल (गोंडवाना) की रानी दुर्गावती, जिसकी ई० १५६४ में आसफ़खाँसे लड़ाई हुई थी, के पिता कीरतराय इसी वंशके थे।

जब चन्देलोंका क्षय हो रहा था, तब क्रमशः बुन्देलोंका उदय हुआ। सन् १५३१ में रुद्रप्रतापने ओरछाकी स्थापना की व उसे राजधानी बनाया। सभी बुन्देले राजपरिवार रुद्रप्रतापके ही वंशज हैं। इन्हें गाहड़वालों व स्थानीय योद्धा जातियोंसे उद्भूत कहा जाता है। अन्य राजपूतोंमें सामान्यतः विवाहके लिये कुल टाला जाता है, पर बुन्देलोंका विवाह बुन्देलोंमें ही होता है। बुन्देल वंशके राजा निर्भीक व स्वाभिमानी प्रवृत्तिके रहे हैं। इनमेंसे कई मुगलोंके महत्त्वपूर्ण मनसबदार रहे हैं, फिर भी उनका मुगलोंसे विद्रोह व संघर्ष ही चलता रहा था।[४०] बुन्देले शासकोंमें परस्पर फूट रहनेके कारण बुन्देलखण्डमें कभी लम्बे समय तक शान्ति नहीं रही। मराठोंके समयमें बुन्देलखण्ड क्रमशः मराठोंके अन्तर्गत हो गया।

ब्रिटिश राज्य हो जानेपर, सागर व दमोह जिलोंमें स्थायी शासन हुआ व रेल आदिके कारण संचार व्यवस्था हो गई। बुन्देलखण्डके आन्तरिक भागोंसे यहाँ जैन बड़ी संख्यामें आकर बसने लगे।

गोलापूर्व जातिका उद्भव और विकास

ऊपरके विवेचन से यह स्पष्ट है कि गोलापूर्व जैन बारहवीं शताब्दीमें पपौरासे धामोनीके बीच रहते थे, व कम से कम डेढ़-दो सौ वर्षोंसे इनका वहीं निवास था। गोल्ला देशके उत्तरी भागमें रहनेवाली गोलालारे व गोलापूर्व ब्राह्मण जातियोंसे इनका क्या संबंध है, इस पर विचार आवश्यक है।

यदि एक ही क्षेत्रमें बसी दो जातियोंका स्वतंत्र अस्तित्व है तब यह माना जाना चाहिये कि उनमें कुछ अन्तर अवश्य है। पर यदि दो एक जैसी जातियाँ अलग-अलग स्थानोंमें बसी हों, तब यह संभव है कि वे कभी एक ही रही हों। गोलापूर्व जाति गोल्ला देशके दक्षिण-पूर्वी भागमें बसी है, जबकि गोलाराडे जाति उत्तरी भाग में। हो सकता है कि वे एक ही जाति रही हों व अलग-अलग स्थानोंमें बसनेके कारण अलग-अलग नामोंका प्रयोग करने लगी हों। दोनों जातियोंमें दो-एक गोत्र एक ही हैं। पर इससे इनका एकत्व सिद्ध नहीं होता। हो सकता है कि एक जातिके कुछ लोग दूसरी जातिके क्षेत्रमें जा बसे हों व उनकी धर्मरक्षाके लिये दूसरी जाति वालोंने उन्हें अपनेमें मिला लिया हो। इस प्रकारका खंडेलवाल जैनोंके बारेमें सुननेमें आता है। बीजावर्गी जातिमें जैनोंकी संख्या कम होनेसे उन्हें खंडेलवालोंने अपनेमें मिला लिया। गोलापूर्व, गोलालारे व गोलसिंघारे तीनों जातियोंका इक्ष्वाकु वंशसे उत्पन्न कहा गया है, गोलापूर्वोंको ई० १८५० के द्रोणागिरके लेखमें, गोलालारोंको ई० १४५४ के नागकुमारचरितमें, व गोलसिंघारोंको ई० १६४० के ग्वालियरके एक यंत्र लेख में[२५]। परन्तु इन लेखोंके प्राचीन न होनेसे इन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। गोलापूर्व व गोलालारे जातिका ११वीं १२वीं शताब्दीसे अलग-अलग अस्तित्व रहा है। ये दोनों जातियाँ कभी एक थीं, ऐसा प्रामाणित नहीं किया जा सकता, पर असम्भव भी प्रतीत नहीं होता। नवलसाह चंदेरियाने जिस गोयल-गढ़का उल्लेख किया है वह ग्वालियर ही प्रतीत होता है। हो सकता है कि गोल्लापूर्व जाति ग्यारहवीं शताब्दी के कई सौ वर्ष पहले ग्वालियरके आस पास रहती हो व गोलालारे जातिसे इसका कोई सम्बन्ध रहा हो। गोलसिंघारे जाति लघुसंख्यक है (सन् १९१४ में सिर्फ ६२९) व इनका निवास भिंडके पासमें ही रहा है। इस कारणसे गोलसिंघारे गोलालारोंकी ही शाखा हों, यह सम्भव है।

कुछ लेखकोंने यह संभावना व्यक्त की है कि गोलापूर्व जैन व गोलापूर्व ब्राह्मणोंमें कुछ सम्बन्ध रहा हो[१५, १६]। पर यह संभव नहीं लगता। एक ही नामकी कई ब्राह्मण व बनियाँ जातियाँ हैं जो पूर्णतः स्वतंत्र हैं। गोलापूर्व जैनोंमें इक्ष्वाकु जातिसे उत्पन्न होनेकी परंपराके कारण ये ब्राह्मणोंसे उद्भूत नहीं लगते। गोलापूर्व ब्राह्मण कृषिसे जीविकोपार्जन करते हैं, इस कारणसे इन्हें अन्य ब्राह्मणोंसे नीचा माना जाता है। कुछ लेखकोंने इन कारणोंसे इनके ब्राह्मण न होनेकी शंका व्यक्त की है।

१. ये कृषि करते हैं, वेदोंका अध्ययन आदिकी इनमें परंपरा नहीं है।
२. इनके गोत्रोंमेंसे बहुतोंके नाम ऋषियों पर नहीं, ग्रामों आदिके नामों पर आधारित हैं।
३. इनमें बीसा-दसाका भेद है। ये मांस, प्याज, लहसुन नहीं खाते हैं। इनका यह व्यवहार बनियों-की तरह है।[१६]

ध्यानसे विचार करने पर यह शंका गलत मालूम होती है। इनका आचार-व्यवहार ठीक सनाढ्य ब्राह्मणों जैसा है व ये उनसे ही उत्पन्न माने जाते हैं।[२] कई जातियोंमें दोहरी गोत्र परंपरा रही है। एक विभाजन संस्कृत गोत्रों द्वारा होता है व दूसरा देशी-भाषाके। देशी-भाषाके गोत्र अक्सर पुर, मूल आदि कह-लाते हैं। बिहारके सकलद्वीपी ब्राह्मणोंमें, पंजाबके सारस्वत ब्राह्मणोंमें व उ०प्र० व बिहारके भुँइहर ब्राह्मणों-में इसी तरहके दोहरे गोत्र हैं।[३८] व्यवहारमें देशी-गोत्रोंको टालना संस्कृत गोत्रोंको टालनेसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गोलापूर्व ब्राह्मणोंमें जो स्थान सूचक नाम हैं, वे देशी-भाषाके गोत्र हैं। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों-में भी दोहरी गोत्र परंपरा होनेके संकेत मिलते हैं।[२०] दस-बीसा भेद कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंमें भी है जो बनियोंके भेदसे भी अधिक सूक्ष्मतासे प्रयुक्त होता है। इनमें 'विश्वा' सिर्फ १० व २० ही नहीं बल्कि ५,७, १८, १९ आदि भी होते हैं। कान्यकुब्जवंश प्रबोधिनी व ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तंडमें सभी कान्यकुब्जोंके विश्वा दिये हैं।

उपरोक्त कारणोंसे गोलापूर्व जैनों व गोलापूर्व ब्राह्मणोंमें कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। गोलापूर्व-ब्राह्मणोंके एक-दो गोत्र जैनोंके गोत्रोंसे मिलते-जुलते हैं, पर यह संयोग ही लगता है।

नवलसाह चंदेरियाने गोलापूर्व जातिको तीन भागोंमें विभक्त कहा है बिसविसे, दशविसे व पचविसे। वर्तमानमें दशविसे सुननेमें नहीं आते। इस बारेमें कल्पना की गई है[१५] कि किसी समय कोई विवाद हुआ जिससे जाति तीन भागोंमें बट गई। एक भागमें २० × २० = ४०० घर थे, दूसरेमें १० × २० = २०० व तीसरेमें ५ × २० = १०० घर। इनसे ही तीन भेदोंकी उत्पत्ति हुई। परन्तु लगभग सभी बनिया जातियोंमें इस प्रकारका भेद देखते हुए यह कल्पना सही नहीं लगती। गोलापूर्वोंमें सिर्फ १.८% पचविसे हैं (सन् १९१४ में १९४) बाकी ९९.२% सामान्य हैं। पचविसोंमें सिर्फ ८ गोत्र हैं। ये केवल २३ ग्रामोंमें बसते थे जो अधिकतर रहली तहसील (जि० सागर), हटा तहसील (जिला दमोह) व जबलपुर जिलेमें हैं। पचविसे यहाँ काफी समयसे बसे हैं। बहुतसे सम्पन्न हैं व मन्दिरोंके निर्माता हैं। इस क्षेत्रमें अन्य गोलापूर्व पिछले डेढ़-दो सौ वर्षोंसे ही आकर बसे हैं, जबकि पचविसे बहुत पुराने समयसे वहींके वासी हैं।

दमोह व जबलपुर जिले डाहल मंडलमें हैं, यहाँ कलचुरि-चेदि राज्य था, कलचुरियोंके राज्यकालकी बड़ी संख्यामें जैनमूर्तियाँ पाई गई हैं। इनमेंसे कई भव्यजिनबिंब कुँडलपुर, बहोरीबंद, कटनी, जबलपुर व सतनाके मन्दिरोंमें हैं। इनमें अधिकतरमें लेख नहीं हैं। ये किस जाति द्वारा स्थापित की गयीं यह ज्ञात नहीं है, वर्तमान यहाँके सभी जैन अन्यत्रसे आकर बसे मालूम होते हैं। केवल बहोरीबंदकी मूर्ति पर गोलापूर्व जातिका उल्लेख है। यह असंभव नहीं है कि पचविसे उन गोलापूर्वोंके वंशज हों जो यहाँ प्राचीनकालमें आकर बसे हों।

अधिकतर बनिया जातियाँ श्रेणियोंमें विभक्त हैं। ये उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[१३,१७]

गोलापूर्व : बिसविसे, दशविसे (लुप्त), पचविसे, बिनैकया।

परवार : अष्टशाख, चौसखा, लुहरीसेन (बिनैकया)।

अग्रवाल : बीसा, दसा, पचा।

हूमड : बीसा, दसा।

श्रीमाली : बीसा, दसा।

ओसवाल : बीसा, दसा, पाँचा, अढ़ाइया।

गहोई : बीसा, दसा, पचा।

नेमा : बीसा, दसा, पचा।

पोरवाल : बीसा, दसा, पाँचा।

खंडेलवाल : एक ही श्रेणी।

लघुश्रेणियोंकी उत्पत्तिके बारेमें कई कहानियाँ कही जाती हैं। इनका सार यह है। उत्तमश्रेणी बीसा कहलाती, यह अंक पूर्णता या शुद्धताका द्योतक है। जो बीससे जातिच्युत हुये वे दसा कहलाये। जो ऐसे संबंधकी संतान है जो जातिमान्य नहीं है (विधवा या अस्वीकार्य जातिकी पत्नी) वे लघुश्रेणीके माने जाते हैं। जिसने लघुश्रेणीके साथ व्यवहार रखा, वे भी लघुश्रेणीमें माने गये। जो ऐसे स्थानोंमें जाकर बसे जहाँ जातिका निवास नहीं है उन्हें भी जाति-च्युत माना जाता था। जो दसा श्रेणीसे जातिच्युत हुआ वे पचा कहलाये। परंपरागत रूपसे विवाह अपनी ही श्रेणीमें होता था, पर किसी जातिके पंक्तिभोज (पक्की पंगतमें) में सभी श्रेणियोंको साथ बैठनेका अधिकार रहा है।[१३,१६] धर्माचरण, मंदिर आदि

बनवानेका अधिकार भी सभी श्रेणियोंको रहा है। कालांतरमें लघुश्रेणियोंका सम्मान बढ़ता जाता है और वे अन्ततः उत्तम श्रेणीके बराबर हो जाती हैं।[१२,१६] ऐसा माना गया है कि लघुश्रेणीके परिवारोंके कई पीढ़ियों से सम्मानपूर्वक रहनेसे वे उच्चश्रेणीमें मिल जाते हैं। वर्तमानमें कई जातियोंमें बीसा-दसाका भेद महत्त्वहीन हो गया है जो उचित ही है। जातियोंके सांस्कृतिक व धार्मिक अस्तित्वकी रक्षामें लघुश्रेणियोंका बड़ा योगदान रहा है। लघुश्रेणियोंके अस्तित्वसे लोग जातिच्युत होकर भी जातिके सदस्य रहे। हूँमड़ जातिमें दसा श्रेणी बीसा श्रेणीसे दस गुनी है, हूँमड़ जातिका अस्तित्व बने रहनेमें दसा श्रेणीका ही योग सर्वाधिक रहा है।

गोलापूर्वोंमें दशविसे श्रेणीका अस्तित्व नहीं रह गया है। सम्भवतः डेढ़-दो सौ वर्ष पहले इस श्रेणीको मुख्य श्रेणीमें मिला लिया गया। पचविसे दूरके स्थानोंमें बसे होनेसे उनका अलग अस्तित्व बना रहा। ई० १९२१ में एक कमेटी ने पचविसोंमें समान संस्कार व धर्माचरण देखकर यह निश्चित किया कि इनसे व अन्य गोलापूर्वोंमें विवाह संबंध उचित हैं। तबसे पचविसों व अन्य गोलापूर्वोंमें भेद समाप्त माना जाना चाहिये। जो अभी कुछ ही पीढ़ियोंसे जाति च्युत हुए हैं उन्हें बिनैकया कहते हैं। इनके साथ विवाह संबंध करनेमें संकोच किया जाता है। इनकी संतति कालान्तरमें पुनः मुख्य श्रेणी में आ जायेगी।

विभिन्न श्रेणियोंकी उत्पत्ति कब हुई, यह कहना मुश्किल है। कान्यकुब्जोंमें सैकड़ों वंशकर्ता पुरुषोंके अलग-अलग विश्वा निश्चित है।[२०] किसी-किसीके मतसे ये ई० ११७९ में कन्नौज नरेश गाउड़वाल जयचंदके समयमें निर्धारित किये गये। पर ये किसी प्राचीन वंशावलीमें नहीं पाये गये हैं। पोरवाल (पोरवाड़) में दसा-बीसा भेद ई० १३वीं शताब्दीसे वस्तुपाल-तेजपालके समयसे कहा जाता है।[१३] वस्तुपाल-तेजपाल दोनों भाइयोंने आबूके प्रसिद्ध देवालयोंका निर्माण कराया था। इनके पिता असराजने श्रीमाल जातिकी बालविधवा कुमारदेवीसे विवाह किया था। विधवा विवाह पर बन्धन धार्मिक नहीं, सामाजिक रहा है। दक्षिणभारतके सेतवाल, चतुर्थ, पंचम, बोगार आदि कई जैन जातियोंमें विधवा विवाह परंपरागत रूपसे होता आया है।[१३] संभवतः इसी कारणसे दक्षिणमें बीसा-दसाभेद नहीं है। यह सम्भव है कि गोलापूर्व व अन्य जातियोंमें श्रेणीभेद १२वीं-१३वीं शताब्दीमें उत्पन्न हुआ हो। खंडेलवालोंमें भी श्रेणियाँ रही होंगी, पर जब उनका शेखावाटीके बाहर व्यापक प्रसार हुआ होगा, तब लुप्त हो गयी होंगी।

गोलापूर्व जातिकी उत्पत्ति ईक्ष्वाकु कुलसे कही गई है। वास्तवमें कुछ जातियोंको छोड़कर सभी पुरानी बनिया जातियोंकी उत्पत्ति क्षत्रियोंसे कही जाती है। इन जातियोंकी उत्पत्ति इनसे बताई जाती है[१०,१२,१७,३९]।

गोलापूर्व : ईक्ष्वाकु।
गोलालारे : ईक्ष्वाकु।
गोलसिंघारे : ईक्ष्वाकु।
जैसवाल : यदु।
लमेंचू : यदु।
अग्रवाल : यदु (गर्ग गोत्र)
ओसवाल : पँवार, सोलंकी, भट्टी आदि अग्निकुलके राजपूत।
पोरवाड : गुर्जर जाति।
खंडेलवाल : सोम, हेम, चौहान, राठोर, चन्देल, कछवाहा आदि राजपूत कुल।
माहेश्वरी : राजपूत (कई कुल या केवल झाला)

बघेरवार : कई राजपूत कुल ।
पल्लीवाल : बड़गूजर राजपूत ।
परवार : राजपूत ।
असाटी : किसान-संभवतः अहीर ।

राजस्थानकी अधिकतर जैन जातियाँ राजपूतोंसे उत्पत्ति बताती हैं। परन्तु बहुतसे राजपूत घरानों (कछवाहा, भट्टी आदि)का उद्भव उसी समय हुआ जब बनियोंका उद्भव हो रहा था। शिलालेखों के अध्ययनसे यह स्पष्ट है कि कुछ प्राचीन कुलोंको छोड़कर, अधिकतर राजपूत कुल काफी बादमें उत्पन्न हुए। चन्देलोंके उल्लेख ९वीं शताब्दीके आरम्भमें, कछवाहोंके १०वीं शताब्दीके मध्यमें, मिलते हैं। राजपूत कुल स्वतंत्र जातियाँ नहीं थीं, बल्कि परिवार थे। उत्तम राजपूतोंमें आज भी कुलका गोत्रकी तरह प्रयोग होता है। बनिया जातियोंकी उत्पत्तिके समय (१०वीं शताब्दीके आसपास) यह सम्भव नहीं लगता कि राजपूत कुल दूर-दूर जाकर बस चुके हों वे एक ही स्थानमें अनेक कुलोंके राजपूत बसे हों। यह अवश्य सम्भव है कि बनियोंकी उत्पत्ति उन्हीं जातियोंसे हुई हो जिससे राजपूत उत्पन्न हुए हैं।

गोलापूर्व आदि जातियोंके ईक्ष्वाकु या यदु कुलोंसे उत्पत्तिके उल्लेख प्राचीन नहीं हैं अतः उन्हें विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यदि प्राचीन उल्लेख मिलें तो भी उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता क्योंकि प्राचीन क्षत्रियोंके राज्यकाल व बनिया जातियोंकी उत्पत्तिमें करीब डेढ़ हजार या अधिक वर्षोंका अन्तर है। दक्षिण भारत के कुछ राजवंशोंने ईक्ष्वाकु व यादव शब्दोंका प्रयोग किया था। आंध्रमें तीसरी शताब्दीके मध्यमें एक राज्यकुल ईक्ष्वाकु कहलाता था। जिला रायपुरमें श्रीपुर (सिरपुर) स्थानमें ५वींसे १०वीं शताब्दीके बीच सोमवंशी या पांडुवंशी (अर्थात् यदुकुलके) कुलका अस्तित्व रहा है। ग्यारहवीं शताब्दीमें बंगालमें यादव नामका राजकुल रहा है। परन्तु इनकी भी उत्पत्ति प्राचीन क्षत्रियोंसे निश्चित नहीं है। पर ईक्ष्वाकु व यदु कुलोंके वंशज अवश्य रहे होंगे व कुछ बनिया जातियोंको इनसे उत्पत्ति असंभव नहीं है।

कई अन्य जातियोंकी तरह गोलापूर्वोंमें भी दोहरी गोत्र परंपरा रही है। नवलसाह चंदेरियाने अपना गोत्र प्रजापति व बैंक चंदेरिया लिखा है। वर्तमानमें गोलापूर्वोंमें दोहरी गोत्र परम्पराका कोई स्मरण नहीं है और न ही प्रजापति गोत्रका अस्तित्व है। नवलसाहने वर्धमान पुराणमें ५८ बैंक (गोत्र) की एक सूची दी है। इसमें एक या दो गोत्र गलतीसे दो बार गिन लिये गये हैं। नवलसाहका गोत्रोंके नामोंका संग्रह पूरा नहीं था। कालांतरमें किसीने इस सूचीमें संशोधन करके कुछ गोत्रोंके नाम निकालकर कुछ अन्य नाम जोड़ दिये। वर्धमानपुराणकी जिस प्रतिका उद्धरण गोलापूर्व डायरेक्टरीमें है वह संशोधित प्रति है। संशोधनकारने बैंक शब्दके स्थानपर गोत्र शब्दका प्रयोग किया है व सवैया इकतीसा छंदमें एक जगह "ठीक कीजिये" जोड़ा है। मुद्रित वर्धमान पुराण मूल प्रतिपर आधारित है।

सभी प्राप्त गोत्रावलियोंको देखकर लगता है कि गोत्रोंकी कुल संख्या ७३ के आसपास तक रही है। गोलापूर्व डायरेक्टरीकी जनगणनामें केवल ३३ ही गोत्र मिले थे। ऐसा प्रतीत होता है कि गोत्रोंकी संख्या घटती बढ़ती रही है। कुछ परिवार अपने स्थानके नामका प्रयोग करने लगे व कालांतरमें उस स्थानके नामपर नया गोत्र बन गया। कुछ गोत्र व्यवसायके कारण बन गये होंगे। किसी-किसी गोत्रके सभी परिवार विप्लव, महामारी या दुर्भिक्षमें मारे गये। कुछ गोत्र सम्भवतः अन्य जातियोंमें मिल गये हों। अहारके ई० १६६३ के लेखमें गोलापूर्व जातिमें पैंथवार गोत्रका उल्लेख है, यह सभी गोत्रावलियोंमें भी है पर अब नष्ट हो चुका है। सन् १९४१ में छोड़कटे केवल १६ व पञ्चरत्न केवल १३ थे। दुर्गैले गोत्रका केवल एक व्यक्ति था।

कई जातियोंमें गोत्रोंके नामोंके अर्थका अनुमान लगाया जाना असंभव या कठिन है। अग्रवालोंमें गोइल (गोयल), सिंघल, कंसिल, जिंदल, मित्तल आदिकी उत्पत्तिका अनुमान लगाना मुश्किल है, संभव है कि ये गर्गकी तरह ब्राह्मण ऋषियोंके नामपर आधारित हों।[२३] इसी प्रकार परवारोंमें गोइल्ल, भारिल्ल, बाझल्ल आदि शब्दोंकी उत्पत्तिका अनुमान कठिन है। गोलापूर्वोंमें कुछ गोत्रोंके नामोंके अर्थका अनुमान किया जा सकता है। गोत्रोंको इन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है।

(१) आजीविकाके आधारपर :—वर्तमान कपासिया, कोठिया, सनकुटा, करैया। लुप्त, गोरिहा, सोनी। सौनारे गोत्र गोलालारोंमें व सोनी गोत्र खंडेलवालोंमें व ओसवालोंमें भी है। खंडेलवालों व ओसवालोंमें सोनी गोत्रको सोनीगरा चौहानोंसे उत्पन्न कहा जाता है,[२४] पर यह सोनेके व्यवसायसे ही सम्बन्धित है।

(२) याकारांत : उनमेंसे अधिकतर स्थानोंके नामपर आधारित होते हैं। वर्तमान—कनकसेनया, गुगौरया (या गुबारया), चंदेरिया (चंदेरीके), जुझौतिया (संभवत खजुराहो · महोबा तरफके), धवौलिया, पटौरिया, पतरिया, बनोनया, बिलबिलया (या बिलबिले), भिलसैया (भेलसी ग्राम या भेलसाके), मरैया (मरौराके)। लुप्त—कनकपुरिया, कहारिया, कोनिया, खैरानिया, जतरिया, दरगैया, धमौनिया (धामोनीके), पिपरैया, पपौरहा (पपौराके), बड़घरिया, भरतपुरिया, मझगैया, लखनपुरिया, सपौलिया (या सपेले), सिरसपुरिया, सौंरया, सौतिया व हीरापुरिया (हीरापुरके)। इनमेंसे अधिकतर स्थान गोलापूर्वोंके केन्द्रीय स्थान (पपौरा, धमोनी आदि) में ही होना चाहिये। अगर इनमेंसे कुछ स्थान भिंड-ग्वालियरके आसपासके सिद्ध होते हैं तो इससे दो निष्कर्ष निकल सकते हैं—या तो गोलापूर्व वास्तवमें ग्वालियरके आसपासके वासी थे, और या इन स्थानोंके गोलालारे दक्षिणमें आ बसे व कालांतरमें गोलापूर्वोंमें मिल गये।

(३) ले या ऐकारांत :—इनमेंसे कुछ स्थान सूचक प्रतीत होते हैं जैसे वर्तमान—गड़ौले, दुगैले, बिलबिले व लुप्त: खड़ैरे, तिगैले; चारखेरे, पचलौरे, सपेले। कुछ अन्य स्पष्ट नहीं है जैसे वर्तमान—खुर्देले, गोदरे, पड़ेले (पांडेले), फुसकेले, रांधेले, रौतेले, सांधेले व लुप्त-छवेले, बोदरे। कुछ नाम दोनों प्रकारसे मिलते हैं जैसे बिलबिले-बिलतिलया, सपेले-सपौलिया। कोई-कोई रांधेलीय, खुर्देलीय, सांधेलीय लिखने लगे हैं, पर यह आधुनिक संस्कृतिकरण लगता है।

यहाँपर यह बात विचारणीय है कि कई जातियोंमें कई गोत्र लकारांत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि—एले,–इल व–इल्ल एक ही प्रत्ययके रूप हैं।

१. अहारके एक लेखमें खंडेलवालको खडिल्लवाल लिखा गया है।

२. श्रवणबेल्गोलाके एक लेख में चन्देलको चंदिल कहा है।

३. गोलापूर्वोंमें–एले; परवारों व गहोइयोंमें–इल्ल या–अल्ल, अग्रवालोंमें–इल या–अलका अर्थ समान हो सकता है। चन्देल, बुन्देल, बघेल आदिमें—एलका अर्थ भी वही होना चाहिये। यह प्रयोग प्राचीन लगता है, संभव है यह उपरोक्त-या प्रत्ययका ही प्राचीन रूप हो।

४. संस्कृतके कुछ गोत्रोंके नाम देशी भाषामें नहीं, संस्कृतमें है। दक्षिणके जैनोंमें अक्सर संस्कृत गोत्र रहते हैं, पर उत्तर भारत में संस्कृत गोत्रों (ऋषियोंके नामोंको छोड़कर) कम ही मिलते हैं। वर्तमान—खाग, नाहर, रस, पञ्चरत्न, निर्मोलक। लुप्त—इंद्रमहाजन, गन्धकार, दण्डकार (या दंडधार), साधारण, शेखर। इन्द्रमहाजन कोई अत्यंत संपन्न परिवार व गंधकार इत्रके व्यवसायी लगते हैं।

५. अन्य, वर्तमान—टेंटवार, चौंसरा, छोड़कटे (या छोकड़े), संघी, अलेह, उचा। लुप्त—टीका-

केरावत, सोंधनी, घना (या धनी), पैंथवार, पचरसे, सरखड़े। संधी, अलेह व उचा गोत्र गोत्रावलियोंमें नहीं हैं, पर दमोहकी जनगणनामें पाये गये हैं।[२] इनमेंसे भी कई स्थान-सूचक ही प्रतीत होते हैं।

कभी-कभी गोलापूर्वोंमें पटवारी, चौधरी, प्रधान व बड़कुर गोत्र कहे जाते हैं पर ये वास्तवमें पारिवारिक पद हैं। हो सकता है बड़थरिया भी कभी पद रहा हो व कालांतरमें गोत्रकी तरह प्रयुक्त होने लगा हो।

बुन्देलखंडमें गजरथके साथ पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा करानेकी परम्परा है। इस प्रकार प्रतिष्ठा करानेसे सामाजिक उपाधि दी जाती है। साह (साधु) तो सभी कहलाते हैं, पहले रथसे सिंघई (संघपति) दूसरेसे सवाई सिंघई, तीसरेसे सेठ (श्रेष्ठि) व चौथेसे सवाई (या श्रीमंत) सेठ। ये पद पूर्वजोंकी समृद्धिके द्योतक हैं। गोत्रोंकी जनसंख्याका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि संपन्न परिवारोंकी अधिक वंशवृद्धि हुई है। गोलापूर्वोंमें सबसे अधिक (ई० १९४१ में १६८७) फुसकेले हैं जो सिंघई, सवाई सिंघई या सेठ हैं। खाग (१५०५) सिंघई, सवाई सिंघई, सेठ व सवाई सेठ हैं। चन्देरिया (१२३५) सिंघई व सवाई सिंघई हैं। सबसे कम जनसंख्या दुगैले (१), छोडकटे (१६) व पंचरत्न (१३) हैं, इनमेंसे कोई भी सिंघई आदि पदोंके धारी नहीं है। इन पदोंकी परम्परा प्राचीन लगती है, घुवारा के ई० १२१५ के लेखमें गोलापूर्व सिंघईका उल्लेख है।[२५]

वर्धमानपुराण लिखे जानेके बाद व गोलापूर्व डायरेक्टरीके प्रकाशनके पूर्व कुछ ऐसी घटनायें घटीं जिनका गोलापूर्व जातिपर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

१. करीब आधे गोत्र नष्ट हो गये।

२. लोग यहाँ-वहाँ जाकर बस गये। अपने वंशके बारेमें परंपरागत ज्ञान भुला दिया गया। नवलशाहने दोहरी गोत्र परम्पराका उल्लेख किया है, उसकी वर्तमानमें गोलापूर्वोंमें स्मृति शेष नहीं है। नवलसाहने फुसकेले गोत्रके चार मूल ग्रामोंका नाम लिखा है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों आदिमें भी इस प्रकार की परम्परा है। पर गोलापूर्वोंमें यह जानकारी भी लुप्त हो गई है।

३. बिसबिसे व दसबिसे श्रेणियोंमें अचानक जनसंख्या कम हो जानेसे उपयुक्त विवाह सम्बन्ध मिलना मुश्किल हो गया। इस कारणसे दोनोंका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त होकर एक ही श्रेणी रह गई। केवल जो पचविसे दूरके स्थानोंमें बसे थे, उनका स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा।

गोलापूर्वोंकी जनसंख्याके इस भारी नाशका कारण स्पष्ट नहीं है। हो सकता है यह महामारी या दुर्भिक्षके कारण हुआ हो। यह भी सम्भव है कि यह राजनैतिक दुर्व्यवस्थाके कारण हुआ हो। ऐसा कहा जाता है कि मराठा सेनाने जिन स्थानोंपर आक्रमण किया, उनमेंसे कई बहुत वर्षों तक उजाड़ पड़े रहे। इसके पीछे मराठा सेनामें पिंडारी आदि वर्गोंका होना हो सकता है।

अन्य सम्बन्धित जातियाँ

आसपास बसी हुई जैन जातियोंमें परस्पर धार्मिक व सामाजिक व्यवहार रहा है। इस कारणसे जातियोंने एक-दूसरेपर काफी प्रभाव डाला होगा। यहाँपर गोलापूर्वोंके आसपास बसने वाली अन्य जातियों पर विचार किया गया है।

अहार क्षेत्रमें प्राप्त लेखोंमें सबसे अधिक गोलापूर्वोंके हैं। ये प्राचीनकालसे अब तकके हैं। प्राचीन लेखोंमें १५ जैसवाल जातिके (ई० ११४३ से १२३१ तक) व १३ गृहपति जातिके (ई० ११४६ से ११८० तक) हैं। इससे प्रतीत होता है कि जैसवालोंका निवास आसपास ही रहा होगा। वर्तमानमें जैसवाल जैनोंको

राजस्थानी जाति माना जाता है। इनकी उत्पत्ति जैसलमेर[२४] या उज्जैनसे[१०] असम्भव है, इनका मूल स्थान रायबरेली जिले में प्राचीन जैस या जायस ही प्रतीत होता है। ई० १२५६ में जायस जातिके लक्खनने अणुवय-रयण-पाइच्छकी रचना की थी। इनका निवास यमुनाके किनारे रायवड्डीया स्थानपर था। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमेंसे जो राजस्थानमें जाकर बसे वे अधिकतर जैन बने रहे, पर जो उत्तर प्रदेशमें ही रहे, वे अधिकतर वैष्णव हो गये। वर्तमानमें बुन्देलखण्डके आसपास इनका निवास नहीं है।

शिलालेखोंसे व वर्धमान पुराणके उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि बुन्देलखण्डकी वर्तमान गहोई जाति ही प्राचीनकालमें गृहपति कहलाती थी। गहोई शब्दकी उत्पत्ति गुह्य शब्दसे कही जाती है पर यह काल्पनिक है।[१६] बुन्देलखण्डमें बारहवीं शताब्दीमें अनेक स्थानोंपर इस जातिद्वारा स्थापित जैन मूर्तियाँ पाई गई हैं। इसी जातिमें पाणाशाह नामके एक श्रेष्ठीने अनेक मंदिरोंका निर्माण कराया था, इनके बारेमें कई किंवदंतियाँ कही जाती हैं। इन्हें गोलापूर्व कहा गया है, पर यह लेखोंके आधारपर गलत सिद्ध होता है। इनमें जातिका संगठन परवारोंसे मिलता है। इनमें बारह गोत्र हैं, हर गोत्र ६ अल या आंकोंमें विभक्त है, विवाहमें अपना गोत्र व माँ, नानी व दादीका अल टाला जाता है। इनमें ई० ११५० के एक लेखमें कोच्छल गोत्रका उल्लेख है। अलोंके नाम मोर, सोहनिया, नगड़िया, पहाड़िया, पोपरवानिया, दादरिया, म ले आदि हैं।[१६] ये प्राचीनकालमें शैव भी रहे हैं। वर्तमानमें इनमेंसे कोई भी जैन नहीं हैं। नवलसाहने इनमें जैन लगारका उल्लेख किया है। वर्तमानमें इनकी उत्पत्ति खरगपुरसे बताई जाती है। इनकी उत्पत्तिके बारेमें एक कहानी कही जाती है जो स्पष्टतः काल्पनिक है। प्राचीनकालमें, विशेषकर बौद्ध ग्रन्थोंमें गृहपति शब्दका प्रयोग सम्पन्न बनियोंके लिये किया गया है, इस जातिकी उत्पत्ति किसी स्थानके गृहपतियोंसे हुई होगी। वर्तमानमें ये वैष्णव हैं, व इनका जैनोंसे सम्बन्ध नहीं हैं। भार्गव ब्राह्मण इनके पुरोहित हैं।

वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें इनमेंसे कोई भी जैन नहीं पाये गये थे। इनके जैन न रहनेका कारण ज्ञात नहीं है। ये बुन्देलखण्डके उत्तरी भागमें बसे जान पड़ते हैं। जिस प्रकार गोलापूर्व डाकुओंके भयमें दक्षिणमें जाकर बसते रहे हैं, उसी प्रकार ये उत्तर प्रदेशमें जाकर बसते रहे हैं। सम्भव है, इनपर ब्राह्मणोंपर प्रभाव होनेसे इन्होंने जैन परम्पराका त्याग कर दिया हो।

गोलापूर्व जातिपर सबसे अधिक प्रभाव परवार जातिका प्रतीत होता है। ये ही गोलापूर्वोंके सबसे निकटके हैं व बुन्देलखण्डके जैनोंमें इनकी संख्या सबसे अधिक है। इन शिलालेखोंमें पुरवाड या पौरपट्ट लिखा गया है। इसे हिन्दी विश्वकोषमें उड़ीसावासी लिखा है।[२] इस भ्रमका कारण शैरिंगका[१०] एक ग्रन्थ है। उत्तर प्रदेशके मैनपुरी जिलेमें काफ़ी परवार बसे हैं, इनमेंसे अधिकतर वैष्णव हो गये हैं। इन्होंने पुर शब्दकी उत्पत्तिका अनुमान पुरी (जगन्नाथपुरी) से लगाया जिसका शैरिंगने उल्लेख किया है। रसेल व हीरालालने इसे राजस्थानसे उत्पन्न माना है।[१६] वास्तवमें शिलालेखों आदिके आधारपर इनका आदिस्थान चन्देरी (जि० गुना) के आसपास होना चाहिये। गुनाके पश्चिममें लगे हुए राजस्थानके झालावाड़ व कोटा जिले हैं जो परवार पश्चिमकी तरफ जा बसे, वे राजस्थानी या मालवी बोलने लगे। झाँसी जिलेमें मदनपुरके पास पुरपट्टन नामके प्राचीन स्थानका अवशेष है[२१], सम्भव है परवार वहींसे निकले हों। इनका पोरवाड़ (प्राग्वाट) या परमार जातियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इनमें १२ गोत्र हैं, हर गोत्र १२ मूरोंमें विभाजित है। परम्परागतरूपसे अपना गोत्र व माँ, नानी, दादी आदिके ७ मूर (कुल आठ शाखायें) विवाहके लिये टाली जाती हैं। पर कोई-कोई चार ही शाखायें टालते थे। इस कारणसे इनमें अष्टशाख (उत्तम) व चौसाख दो श्रेणियाँ हैं (इसी प्रकारका बिहार-बंगालके ग्वालोंमें सतमूलिया-नौमूलिया श्रेणियाँ हैं[३८])। बिनायके लहुरीसेन

(लघुश्रेणी) कहलाते हैं व चार अन्तर्गत श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इनका सम्मान प्रति पीढ़ी बढ़ता है व कालान्तरमें वे सामान्य परवारोंके समान हो जाते हैं।[१३]

इसी जातिमें ई० १४४८-१४९५ में तारणस्वामी हुए हैं। परवारोंमें जो तारणपंथी हुए वे समैय्या या चरणागरे कहलाते हैं। ये दसा-बीसामें बँटे हैं। इनमें व सामान्य परवारोंमें अनुलोम सम्बन्ध रहे हैं।[१६]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इनमें व गोलापूर्वोंमें भोजनका सम्बन्ध रहा है व कभी-कभी विवाह सम्बन्ध भी होता रहा है। विवाह आदिकी परम्पराओंमें गोलापूर्वों व परवारोंमें कुछ अन्तर है, पर अधिकतर रीति-रिवाज एकसे हैं। परवार कई अन्य जैन जातियों (अग्रवाल, गोलापूर्व, गोलालारे से अधिक गौरवर्ण होते हैं।

नेमा जातिका भोजन सम्बन्ध गोलापूर्वोंके साथ लिखा गया है।[१६] यह जाति बुन्देलखण्डमें कुछ शताब्दियोंसे है, पर प्राचीन शिलालेखोंमें इसका उल्लेख नहीं है। यह जाति मालवा, राजस्थान, यहाँतक कि गुजरातमें भी बसी है। हो सकता है यह मालवामें निमाड़से निकली हो। कई पीढ़ियों पहले बुन्देलखण्डके आसपास कई नेमा परिवार जैन थे पर अब क्रमशः वैष्णव हो गये हैं। दिगंबर जैन नेमा अधिकतर विदर्भमें कारंजालाड, खोलापुर व नांदगाँव (खण्डेश्वर) में बसे हैं।[१४] यति श्रीपालचन्द्रके अनुसार इनका मूलस्थान हरिश्चन्द्रपुरी नामक कोई नगर रहा है।[१३]

असाटी बुन्देलखण्डकी ही बनिया जाति है जो मूलतः टीकमगढ़ जिलेमें बसती थी। इनके प्राचीन उल्लेख नहीं मिले हैं, इनके पूर्वजोंको किसान माना गया है।[१६] सम्भवतः इनका उद्भव गुजराती पटेलों (पाटीदार)[३७] की तरह हुआ हो जो अब क्रमशः किसानसे बनिया होते जा रहे हैं। असाटी जैन सन् १९११ में कुछ गाँवोंमें बसते थे, ये अब भी जैन हैं या नहीं, कहा नहीं जा सकता। क्षुल्लक (गणेशप्रसाद वर्णीजी इसी जातिके थे।

सन्दर्भ-सूची

३१. यशवन्त कुमार मलैया, "शोधकण", अनेकान्त।

२५. यशवन्त कुमार मलैया, "गोलापूर्व जाति पर विचार", अनेकांत, वर्ष २२, अं० २, जून १९७२, पृष्ठ ६८-७२।

१७. यशवन्त कुमार मलैया, "वर्धमान पुराणके सोलहवें अधिकार पर विचार", अनेकांत।

10. M. A. Sherring, *Hindu Tribes and Castes as Represented in Banares*, Thurber and Co., 1872.

१४. श्री अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन डायरेक्टरी, प्र० ठाकुरदास भगवानदास जवेरी, १९१४।

१५. श्री अखिल भारतवर्षीय दि० जै० गोलापूर्व डायरेक्टरी, प्र० मोहनलाल जैन काव्यतीर्थ।

२०. नारायण प्रसाद मिश्र, कान्यकुब्ज वंशावली, प्र० श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५९।

३. हरिकृष्ण शास्त्री, ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड, प्र० श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५४।

२७. पं० गोविन्ददास जैन कोठिया न्यायतीर्थ, प्राचीन शिलालेख, श्री १०८ दि० जै० अतिशय क्षेत्र अहार जी प्र० सेठ हीरालाल, दीपचन्द, अनंदीलाल जैन हटा (टीकमगढ़), १९६२।

३९. रमेशचन्द्र गुणार्थी, राजस्थानी जातियोंकी खोज, प्र० आर्यब्रदर्स बुकसेलर, अजमेर, १९६५।

१९. श्री दि० जै० गोलापूर्व समाज, दमोह, प्र० पं० रविचन्द्र जैन, दमोह, १९८५।

१८. प्रदर्शिका श्री दि० जै० गोलापूर्व समाज, छिंदवाड़ा, सं० प्रो० शीलचन्द्र सुमन, हिन्दी विभाग, डेनियल-सन कालेज, छिंदवाड़ा, १९८५ (?)।
४१. कुंदनलाल जैन, "बघेरवाल जातिकी स्थापना"; सन्मति संदेश, अप्रैल १९६७, पृ० ३५-३७।
२१. बलभद्र जैन, भारतके दिगंबर जैनतीर्थ (प्रथम भाग , प्र०भारतीय दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, १९७६। (तृतीय भाग)।
३१. पं० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, न्यायाचार्य डा० दरबारीलाल कोठिया अभिनन्दन ग्रन्थ, १९८२।
37. D. E. Pocock, Kani and Patidar, Oxford University Press, 1972.
31. Dr. Sachau (Tr.) Alberuni's India, S. Chand and Co., 1964.
4. N. M. Dutt, "Origin and Growth of Caste in India, Vol. II, Firma K. L. Mukhopadhyaya, Calcutta. 1965 (Orig. 1931).
38. J. H. Hutton, Caste in India, Fourth Ed., Oxford University Press, 1963.
16. R. V. Russel and Hira Lal, Tribes and Caste of the Central Provinces of India, Vol. I and Vol. II, Cosmo Publications, 1975 (Orig. 1916).
13. V. A. Sangve, Jain Community, a Social Survey, II. Ed. Popular Prakashan, 1980.
4. C. M. Duff, The Chronology of Indian History, Vol. 1. Cosmo Publications, 1972 (Orig. 1890 ?).
६. रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, मुंशीराम मनोहरलाल, १९७१ (मूल० १९१८)।
30. Sarda Srinivasan, "Dravidian words in Desinamala, "Jaurnal of the Oriental Institute, University of Baroda, Vol. XXI, No. 2, Sept-Dec. 1971, P. 114.
२. हिन्दी विश्वकोश (Encyclopedia India) सं० नगेन्द्रनाथ बसु, १९२३।
२६. परमानन्द शास्त्री, "जैन समाजकी कुछ उपजातियाँ", अनेकांत, जून १९६९, पृ० ५०।
9. E. A. H. Blunt, The Caste System of Northern India, 1931.
24. K. C. Jain, Ancient Cities and Towns of Rajsthan, Motil. l Banarasidas, 1972.
१. बी० आर० अम्बेडकर, शूद्रोंकी खोज, अमृत बुक कं०; नई दिल्ली, १९५०।
7. The Sturggle For Empire (The History and Culture of the Indian People), Ed. A. K. Majumdar, Bhartiya Vidya Bhavan, 1966.
40. The Mogul Empire,—
36. The Age of Imperial Kanuj,—
?. The Classical Age,—
33. Age of Imi. unity.
32. A. K. Warder, An Introduction to Indian Historiography, Popular Prakashan, 1972.
8. A Historical Atlas of South Asia, Ed. J. E. Schwartzberg, University of Chicago Press, 1978.

5. S. Bhattacharya, A Dictionary of Indian History, George Braziller New-Yark, 1967.

21. Badlu Ram Gupta, The Aggarwals, a Socio-Economic Study, S. Chand and Co., 1975.

42. V. S. Pramar, "Who Created Caste," The Times of India, New Delhi, July 14. 1974.

२३. चन्द्रराज भंडारी विशारद आदि, अग्रवाल जातिका इतिहास (प्रथम भाग), प्र० अग्रवाल हिस्ट्री आफिस, भानपुरा, इन्दौर, १९३७ ।

१२. श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ स्मारिका, ८ ।

29. G. S. Gharye, Caste and Race in India, 1932.

11. Iycl; The Caste Tribes of Kochin,

२५. यति श्रीपालचन्द्र ।

28. Dr. Mankekar, Mewar Saga, Vikas Publishing House, 1976, P. 34.

34. Sudama Misra, "Janpad States tn Ancient India". Bhartiya Vidyaprakashan, 1973.

35. Vakatoko.

●